सचित्र

संक्षिप्त भक्त-चरित-माला, द्वितीय पुष्प

भक्त-नारी

सम्पादक,
हनुमानप्रसाद पोद्दार

भक्त-नारी

निबन्ध-सूची

चित्र-सूची

* श्रीहरिः *

निवेदन

यह भक्त-चरित-मालाका दूसरा पुष्प है, इसमें भी पाँच भक्त-देवियोंके उपदेशप्रद चरित्र हैं। इनमेंसे शबरी और जना-बाईके चरित्र तो अन्य लेखकोंके लिखे हुए हैं, शेष मीराबाई, करमैतीबाई और रवियाके चरित्रोंमें पहला भक्तमाल आदि अनेक ग्रन्थों और खास जानकार लोगोंके द्वारा सुनी हुई बातोंके आधारपर, दूसरा भक्तमालके आधारपर और तीसरा एक बंगला पुस्तकके आधारसे लिखा गया है। पाठक-पाठिका इन सब चरित्रोंसे लाभ उठावें, यही प्रार्थना है।

सम्पादक

शबरीके बेर

श्रीहरिः

शबरी

(लेखक—वैद्यवर पं० श्रीवृद्धिचन्द्रजी शर्मा)

त्रेता युगका समय है, वर्णाश्रम धर्मकी पूर्ण प्रतिष्ठा है, वनोंमें स्थान-स्थानपर ऋषियोंके पवित्र आश्रम बने हुए हैं। तपोधन ऋषियोंके यज्ञधूमसे दिशाएँ आच्छादित और वेदध्वनिसे आकाश मुखरित हो रहा है। ऐसे समय दण्डकारण्यमें एक पति-पुत्र-विहीना भक्ति-श्रद्धा-सम्पन्ना भीलनी रहती थी, जिसका नाम था शबरी।

शबरीने एक बार मतंग ऋषिके दर्शन किये। सन्त-दर्शनसे उसे परम हर्ष हुआ और उसने विचार किया कि यदि मुझसे ऐसे महात्माओं-की सेवा बन सके तो मेरा कल्याण होना कोई बड़ी बात नहीं है। परन्तु साथ ही उसे इस बातका भी ध्यान आया कि मुझ नीच-कुलमें उत्पन्न अधम नारीकी सेवा ये स्वीकार कैसे करेंगे? अन्तमें उसने यह निश्चय किया कि यदि प्रकटरूपसे मेरी सेवा स्वीकार नहीं होती तो न सही, मैं इनकी सेवा अप्रकटरूपसे अवश्य करूँगी। यह सोचकर उसने ऋषियोंके आश्रमोंसे थोड़ी दूरपर अपनी छोटी-सी कुटिया बना ली और कन्द-मूल-फलसे अपना उदर-पोषण

करती हुई वह अप्रकटरूपसे सेवा करने लगी। जिस मार्गसे ऋषि-गण स्नान करने जाया करते, उषाकालके पूर्व ही उसको झाड़-बुहारकर साफ कर देती। कहीं भी कंकड़ या काँटा नहीं रहने पाता। इसके सिवा वह आश्रमोंके समीप ही प्रातःकालके पहिले पहिले ईंधनके सूखे ढेर लगा देती। शबरीको विश्वास था कि मेरे इस कार्यसे दयालु महात्माओंकी कृपा मुझपर अवश्य होगी। कँकरीले और कँटीले रास्तेको निष्कण्टक और कंकरोंसे रहित देख-कर तथा समिधाका द्वारपर संग्रह देखकर ऋषियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ और उन्होंने अपने शिष्योंको यह पता लगानेकी आज्ञा दी कि प्रतिदिन इन कामोंको कौन कर जाता है? आज्ञाकारी शिष्य रातको पहरा देने लगे और उसी दिन रातके पिछले पहर शबरी ईंधनका बोझा रखती हुई पकड़ी गयी। शबरी बहुत ही डर गयी। शिष्यगण उसे मतङ्ग मुनिके सामने ले गये और उन्होंने मुनिसे कहा कि 'महाराज! प्रतिदिन रास्ता साफ करने और ईंधन रख जाने-वाले चोरको आज हमने पकड़ लिया है। यह भीलनी ही प्रतिदिन ऐसा किया करती है।' शिष्योंकी बातको सुनकर भयकातरा शबरीसे मुनिने पूछा, 'तू कौन है और किसलिये प्रतिदिन मार्ग बुहारने और ईंधन लानेका काम करती है?' भक्तिमती शबरीने काँपते हुए, अत्यन्त विनयपूर्वक प्रणाम करके कहा, 'नाथ! मेरा नाम शबरी है, मन्द भाग्यसे मेरा जन्म नीच कुलमें हुआ है, मैं इसी वनमें रहती हूँ और आप जैसे तपोधन मुनियोंके दर्शनसे अपनेको पवित्र

करती हूँ। अन्य किसी प्रकारकी सेवामें अपना अनधिकार समझकर मैंने इस प्रकारकी सेवामें ही मन लगाया है, भगवन्! मैं आपकी सेवाके योग्य नहीं। कृपापूर्वक मेरे अपराधको क्षमा करें।' शवरीके इन दीन और यथार्थ वचनोंको सुनकर मुनि मतङ्गने दया-परवश हो अपने शिष्योंसे कहा कि 'यह बड़ी भाग्यवती है, इसे आश्रमके बाहर एक कुटियामें रहने दो और इसके लिये अन्नादिका उचित प्रबन्ध कर दो।' ऋषिके दयापूर्ण वचन सुनकर शबरीने हाथ जोड़कर प्रणाम किया और कहा, 'कृपानाथ! मैं तो कन्द-मूलादिसे ही अपना उदर पोषण कर लिया करती हूँ। आपका अन्न प्रसाद तो मुझे इसीलिये इच्छित है कि इससे मुझपर आपकी वास्तविक कृपा होगी जिससे मैं कृतार्थ हो सकूँगी। मुझे न तो वैभवकी इच्छा है और न मुझे यह असार-संसार ही प्रिय लगता है। दीनबन्धो! मुझे तो आप ऐसा आशीर्वाद दें कि जिससे मेरी सद्गति हो।' विनयावनत श्रद्धालु शवरीके ऐसे वचन सुनकर मुनि मतंगने कुछ देर सोच-विचारकर प्रेमपूर्वक उससे कहा 'हे कल्याणि! तू निर्भय होकर यहाँ रह और भगवान्‌के नामका जप किया कर!' ऋषिकी कृपासे शवरी जटा-चीर-धारिणी होकर भगवद्भजनमें निरत हो आश्रममें रहने लगी। अन्यान्य ऋषियोंको यह बात अच्छी नहीं लगी। उन्होंने मतंग ऋषिसे कह दिया कि 'आपने नीच-जाति शवरीको आश्रममें स्थान दिया है इससे हम लोग आपके साथ भोजन करना तो दूर रहा, सम्भाषण भी करना

नहीं चाहते।' भक्ति-तत्त्वके मर्मज्ञ मतंगने इन शब्दोंपर कोई ध्यान नहीं दिया। वे इस बातको जानते थे कि ये सब भ्रममें हैं, शबरीके स्वरूपका इन्हें ज्ञान नहीं है. शबरी केवल नीच जातिकी साधारण स्त्री ही नहीं है, वह एक भगवद्भक्तिपरायण उच्च आत्मा है। ऐसा कौन बुद्धिमान् है जो हीनवर्णमें उत्पन्न भगवत्-परायण भक्तका आदर न करता हो? जिस शबरीके हृदयमें रामका रमण होने लगा था, उससे ऋषि मतंग कैसे घृणा कर सकते थे? उन्होंने इस अवहेलनाका कुछ भी विचार नहीं किया और वे अपने उपदेशसे शबरीकी भक्ति बढ़ाते रहे।

इस प्रकार भगवद्गुण-स्मरण और गान करते-करते बहुत समय बीत गया। मतंग ऋषिने शरीर छोड़नेकी इच्छा की, यह जानकर शिष्योंको बड़ा दुःख हुआ, शबरी अत्यन्त क्लेशके कारण क्रन्दन करने लगी। गुरुदेवका परम धाममें पधारना उसके लिये असहनीय हो गया। वह बोली 'नाथ! आप अकेले ही न जायँ, यह किङ्करी भी आपके साथ जानेको तैयार है। विषण्णवदना कृताञ्जलि दीना शबरीको सम्मुख देखकर मतंग ऋषिने कहा—'हे सुव्रते! तू यह विषाद छोड़ दे, भगवान् श्रीरामचन्द्र इस समय चित्रकूटमें हैं वे यहाँ अवश्य पधारेंगे। उन्हें तू इन्हीं चर्म-चक्षुओंसे प्रत्यक्ष कर सकेगी, वे साक्षात् नारायण हैं। उनके दर्शनसे तेरा कल्याण हो जायगा! भक्तवत्सल भगवान् जब तेरे आश्रममें पधारें

तब उनका भलीभाँति आतिथ्य कर अपने जीवनको सफल करना। तबतक तू श्रीराम-नामका जप करती हुई यहीं निवास कर!' शबरीको इस प्रकार आश्वासन देकर मुनि दिव्यलोकको चले गये। इधर शबरीने श्रीराम-नाममें ऐसा मन लगाया कि उसे दूसरी किसी बातका ध्यान ही नहीं रहा। शबरी कन्द-मूल-फलोंपर अपना जीवन निर्वाह करती हुई भगवान् श्रीरामके शुभागमनकी प्रतीक्षा करने लगी। ज्यों-ज्यों दिन बीतते हैं त्यों-ही-त्यों शबरीकी राम-दर्शन-लालसा प्रबल होती जाती है। जरा-सा शब्द सुनते ही वह दौड़कर बाहर जाती है और बड़ी आतुरताके साथ प्रत्येक वृक्ष, लता, पत्र, पुष्प और फलोंसे तथा पशु-पक्षियोंसे पूछती है कि 'अब श्रीराम कितनी दूर हैं, यहाँ कब पहुँचेंगे।' प्रातःकाल कहती है कि भगवान् आज सन्ध्याको आवेंगे। सायंकाल फिर कहती है कल सबेरे तो अवश्य पधारेंगे। कभी घरके बाहर जाती है, कभी भीतर आती है। कहीं मेरे रामके पैरोंमें चोट न लग जाय इसी चिन्तासे बारम्बार रास्ता साफ करती और काँटे-कंकरोंको बुहारती है। घरको नित्य गोबर गोमूत्रसे लीप-पोतकर ठीक कर लेती है। नित नयी मिट्टी-गोबरकी चौकी बनाती है। कभी चमककर उठती है, कभी बाहर जाती है और सोचती है भगवान् बाहर आ ही गये होंगे। वनमें जो फल सबसे अधिक सुस्वादु और मीठा लगता है वही अपने रामके लिये बड़े चावसे रख छोड़ती है। इस प्रकार शबरी उस राजीवलोचन रामके शुभ दर्शनकी उत्कण्ठासे 'रामागमन-

कांक्षया' पागल-सी हो गयी है। सूखे पत्ते वृक्षोंसे झड़कर नीचे गिरते हैं तो उनके शब्दको शबरी अपने प्रिय रामके पैरोंकी आहट समझकर दौड़ती है। इस तरह आठों पहर उसका चित्त श्रीराममें रमा रहने लगा, परन्तु राम नहीं आये। एक बार मुनि-बालकोंने कहा 'शबरी! तेरे राम आ रहे हैं।' फिर क्या था बेर आदि फलोंको आँगनमें रखकर वह दौड़ी सरोवरसे जल लानेके लिये। प्रेमके उन्मादमें उसे शरीरकी सुधि नहीं थी। एक ऋषि स्नान करके लौट रहे थे। शबरीने उन्हें देखा नहीं और उनसे उसका स्पर्श हो गया! मुनि बड़े क्रुद्ध हुए। वे बोले, कैसी दुष्टा है? जान-बूझकर हम लोगोंका अपमान करती है।' शबरीने अपनी धुनमें कुछ भी नहीं सुना और वह सरोवरपर चली गयी। ऋषि भी पुनः स्नान करनेको उसके पीछे-पीछे गये। ऋषिने ज्यों-ही जलमें प्रवेश किया त्यों-ही जलमें कीड़े पड़ गये और उसका वर्ण रुधिर-सा हो गया। इतनेपर भी उनको यह ज्ञान नहीं हुआ कि यह भगवद्भक्तिपरायणा शबरीके तिरस्कारका फल है। इधर जल लेकर शबरी पहुँचने ही नहीं पायी थी कि दूरसे भगवान् श्रीराम 'मेरी शबरी कहाँ है' पूछते हुए दिखायी दिये। यद्यपि अन्यान्य मुनियोंको भी यह निश्चय था कि भगवान् अवश्य पधारेंगे परन्तु उनकी ऐसी धारणा थी कि वे सर्व-प्रथम हमारे ही यहाँ पदार्पण करेंगे। परन्तु दीनवत्सल भगवान् श्रीरामचन्द्र जब पहले उनके यहाँ

न जाकर शबरीकी मँढ़ैयाका पता पूछने लगे तो उन तपोबलके अभिमानी मुनियोंको बड़ा आश्चर्य हुआ ।

श्रीरामका अपने प्रति इतना अनुग्रह देखकर शबरी उनकी अगवानीके लिये मनमें अनेक उमङ्गें करती हुई सामने चली ।— भक्तमालमें कहा है—

आगू चले राम, आई आगू लेन शबरीहू,
चरण परन धाई वे मिलनको धाये हैं ।
गिरि दण्डही सी भुजदण्ड सों उठाय लीन्हीं,
फिरिकै गिरी सो पुनि भुज पसराये हैं ॥
प्रेम-दशा कही नहीं जात 'रघुराज' दोऊ,
तन मन वचनकी सुधि बिसराये हैं ।
भले आप मिले मोहिं भली मिली तौं हूँ यह,
कहन दुहूनके भकारे भरि आये हैं ॥

तनुको सँभारि करि ताको मिली बार बार,
वारिज-विलोचननि प्रेमवारि ढारिकै ।
करको पकरि तासु ताहिकी कुटीको चले,
'रघुराज' राम मुनिमण्डल बिसारिकै ॥
पुनि पुनि पूछै प्रभु तेरी कुटि केती दूरि,
जामें हौं बसौंगो औध-आनँदको वारिकै ।

कौशला ते मिथिला ते कमला निवास हूँ ते,
पायो मैं सनेह-सुख तोहींको निहारिकै ॥

इस प्रकार कहते हुए भगवान् श्रीराम लक्ष्मण-सहित शबरीके आश्रममें पहुँचे—

शबरी देख राम गृह आये।
मुनिके वचन समुझ जिय भाये ॥
सरसिज लोचन बाहु विशाला।
जटा मुकुट शिर उर बनमाला ॥
श्याम गौर सुन्दर दोउ भाई।
शबरी परी चरण लपटाई ॥
प्रेममगन मुख वचन न आवा।
पुनि पुनि पद-सरोज सिर नावा ॥

(रामचरितमानस)

आज शबरीके आनन्दका पार नहीं है। वह प्रेममें पगली होकर नाचने लगी। हाथसे ताल दे-देकर नृत्य करनेमें वह इतनी मग्न हुई कि उसे अपने उत्तरीय वस्त्रतकका ध्यान नहीं रहा, शरीरकी सारी सुध-बुध जाती रही। इस तरह शबरीको आनन्द-सागरमें निमग्न देखकर भगवान् बड़े ही सुखी हुए और उन्होंने मुसकराते हुए लक्ष्मणकी ओर देखा। तब श्रीलक्ष्मणजीने हँसते

हुए गम्भीर स्वरसे कहा कि 'शबरी ! क्या तू नाचती ही रहेगी ? देख ! श्रीराम कितनी देरसे खड़े हैं ? क्या इनको बैठाकर तू इनका आतिथ्य नहीं करेगी ? इन शब्दोंसे शबरीको चेत हुआ और उस–

तौ दृष्ट्वा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः।
पादौ जग्राह रामस्य लक्ष्मणस्य च धीमतः॥
पाद्यमाचमनीयं च सर्वं प्रादाद्यथाविधि।
तमुवाच ततो रामः श्रमणीं धर्मसंस्थिताम्॥
(वा० रा० आ० का० स० ७४)

–धर्मपरायणा तापसी सिद्धा संन्यासिनीने धीमान् श्रीराम-लक्ष्मणको देखकर उनके चरणोंमें हाथ जोड़कर प्रणाम किया और पाद्य आचमन आदिसे उनका पूजन किया ।

सादर जल लै चरण पखारी ।
अति सुन्दर आसन बैठारी ॥

भगवान् श्रीराम उस धर्मनिरता शबरीसे पूछने लगे–

'कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः।
कच्चित्ते नियतः कोप आहारश्च तपोधने॥
कच्चित्ते नियमाः प्राप्ताः कच्चित्ते मनसः सुखम्।
कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणी॥
(वा० रा० आ० स० ७४)

हे तपोधने! तुमने साधनके समस्त विघ्नोंपर तो विजय पायी है? तुम्हारा तप तो बढ़ रहा है? तुमने कोप और, आहारका संयम तो किया है? हे चारुभाषिणी! तुम्हारे नियम तो सब बराबर पालन हो रहे हैं? तुम्हारे मनमें शान्ति तो है? तुम्हारी गुरु-सेवा सफल तो हो गयी? अब तुम क्या चाहती हो?

श्रीरामके ये वचन सुनकर वह सिद्ध पुरुषोंमें मान्य वृद्धा तापसी बोली, 'भगवन्! आप मुझे 'सिद्धा सिद्धसम्मता तापसी' आदि कहकर लज्जित न कीजिये। मैंने तो आज आपके दर्शनसे ही जन्म सफल कर लिया है।

अद्य प्राप्ता तपः सिद्धिस्तव सन्दर्शनान्मया।
अद्य मे सफलं जन्म गुरवश्च सुपूजिताः॥
अद्य मे सफलं तप्तं स्वर्गश्चैव भविष्यति।
त्वयि देववरे राम पूजिते पुरुषर्षभ॥

(वा० रा० आ० स० ७४)

'हे भगवन्! आज आपके दर्शनसे मेरे सभी तप सिद्ध हो गये हैं, मेरा जन्म सफल हो गया। आज मेरी गुरुओंकी पूजा सफल हो गयी, मेरा तप सफल हो गया, हे पुरुषोत्तम! आप देवताओंमें श्रेष्ठ रामकी कृपासे अब मुझे अपने स्वर्गापवर्गमें कोई सन्देह नहीं रहा!'

शबरी अधिक नहीं बोल सकी। उसका गला प्रेमसे रुँध गया। थोड़ी देर चुप रहकर फिर बोली, 'प्रभो! आपके लिये संग्रह किये हुए कन्द-मूल-फलादि तो अभी रक्खे ही हैं। भगवन्! मुझ अनाथिनीके फलोंको ग्रहणकर मेरा मनोरथ सफल कीजिये। यों कहकर शबरी चिरकालसे संग्रह किये हुए फलोंको लाकर भगवान्‌को देने लगी और भगवान्—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥
(गीता ९।२६)

—गीताकी इस प्रतिज्ञाके अनुसार प्रेमसे सने फलोंकी बार बार सराहना करते हुए उन्हें खाने लगे।

पद्मपुराणमें भगवान् व्यासजीने कहा है—

फलानि च सुपक्वानि मूलानि मधुराणि च।
स्वयमास्वाद्य माधुर्यं परीक्ष्य परिभक्ष्य च॥
पश्चान्निवेदयामास राघवाभ्यां दृढव्रता।
फलान्यास्वाद्य काकुत्स्थः तस्यै मुक्तिं परां ददौ॥
(पद्मपुराण)

शबरी वनके पके हुए मूल और फलोंको स्वयं चख-चखकर परीक्षाकर भगवान्‌को देने लगी।* जो अत्यन्त मधुर फल होते

* वाल्मीकिरामायणके वर्णनसे यह प्रतीत होता है कि शबरी कोई नीच जातिकी

वही भगवान्‌के निवेदन करती । फलोंका आस्वाद लेकर भगवान्‌ने भी शबरीको परम कल्याणपद दे दिया !

कन्द मूल फल सरस अति, दिये रामकहँ आनि ।
प्रेम-सहित प्रभु खायेउ, बारहिं बार बखानि ॥

(रामचरितमानस)

बेर बेर बेर लै सराहैं बेर बेर बहु,
रसिक बिहारी देत बन्धु कहँ फेर फेर ।

नहीं थी, उसका नाम शबरी था, शबर भीलको कहते हैं, इससे लोग उसे संभवतः भिलनी कहने लगे । शबरी संन्यासिनी थी और तपस्यामें बहुत ही बढ़ी-चढ़ी हुई थी, इसीलिये उसको भगवान् श्रीरामने 'श्रमणी, धर्मसंस्थिता, सिद्धा, सिद्धसम्मता, तापसी आदि कहा है।' इसके सिवा यह भी सिद्ध नहीं होता कि उसने उसी समय चख-चखकर भगवान्‌को जूठे फल दिये थे । पद्मपुराणके वर्णनका यह अर्थ होगा कि वह जब फल लाती थी तो उस पेड़के फलको पहले चखकर देख लेती, जिस पेड़के फल अच्छे होते तो उसीके लाकर भगवान्‌के लिये संग्रहमें रखती 'स्वयमास्वाद्य माधुर्यं परीक्ष्य परिभक्ष्य च' का यही भाव उचित प्रतीत होता है ।

वास्तवमें प्रेममें कोई नियम नहीं होता परन्तु भगवान् श्रीरामकी जीवनलीला मर्यादाकी है, इसीसे ऐसा समझना ही उचित है। परन्तु जो सज्जन प्रेमवश वैसा अर्थ करते हैं, वे भी प्रेमके कारण सर्वथा स्तुत्य है, 'भिलनीके बेर' तो प्रसिद्ध ही है ।

सम्पादक

चाखि चाखि भाखैं यह वाहूतें महान मीठो,

लेहु तो लखण यों बखानत हैं हेर हेर ॥

बेर बेर देवेको शबरी सुबेर बेर,

तोऊ रघुवीर बेर बेर तेहि टेर टेर ।

बेर जनि लाओ बेर बेर जनि लाओ बेर,

बेर जनि लाओ बेर लाओ कहैं बेर बेर ॥

इस तरह भक्तवत्सल भगवान्‌के परम अनुग्रहसे शबरीने अपनी मनोगत अभिलाषा पूर्ण हुई जानकर परम प्रसन्नता लाभ की । तदनन्तर वह हाथ जोड़कर बोली—

पाणि जोरि आगे भइ ठाढ़ी ।

प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढ़ी ॥

केहि विधि अस्तुति करौं तुम्हारी ।

अधम जाति मैं जड़ मति नारी ॥

अधम ते अधम अधम अति नारी ।

तिनमहँ मैं अति मन्द गँवारी ॥

(श्रीरामचरितमानस)

आर्त्तत्राणपरायण पतितपावन भक्तवत्सल श्रीरामने उत्तरमें कहा—

कह रघुपति सुनु भामिनि बाता ।
मानौं एक भगति कर नाता ॥
जाति-पाँति-कुल-धरम बड़ाई ।
धन-बल-परिजन-गुण-चतुराई ॥
भगतिहीन नर सोहहिं कैसे ।
बिनु जल बारिद देखिय जैसे ॥

हे भामिनि ! तुम मेरी बात सुनो। मैं एकमात्र भक्तिका नाता मानता हूँ, जो मेरी भक्ति करता है, वह मेरा है और मैं उसका हूँ। जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, द्रव्य, बल, कुटुम्ब, गुण, चतुराई सब कुछ हो पर यदि भक्ति न हो तो वह मनुष्य विना जलके बादलोंके समान शोभाहीन और व्यर्थ है। धन्य है! वास्तवमें भक्ति ही भगवान्‌को प्रिय है। *'भक्तिप्रियो माधवः ।'*

इसीसे भगवान् श्रीराम कहते हैं—

पुंस्त्वे स्त्रीत्वे विशेषो वा जातीनामाश्रमोद्भवः ।
न कारणं मद्भजने भक्तिरेव हि कारणम् ॥

पुरुष, स्त्री या अन्यान्य जाति और आश्रम आदि मेरे भजनमें कारण नहीं हैं केवल भक्ति ही एक कारण है।

यज्ञदानतपोभिर्वा वेदाध्ययनकर्मभिः ।
नैव द्रष्टुमहं शक्यो मद्भक्तिविमुखैः सदा ॥

'जो मेरी भक्तिसे विमुख हैं यज्ञ, दान, तप और वेदाध्ययन करके भी वे मुझे नहीं देख सकते ।' यही घोषणा भगवान्ने गीतामें की है ।

इसके बाद भगवान्ने शबरीको नवधा भक्तिका स्वरूप बतलाया—

तस्माद्भामिनि ! संक्षेपाद्वक्ष्येऽहं भक्तिसाधनम् ।
सतां सङ्गतिरेवात्र साधनं प्रथमं स्मृतम् ॥
द्वितीयं मत्कथालापः तृतीयं मद्गुणेरणम् ।
व्याख्यातृत्वं मद्वचसां चतुर्थं साधनं भवेत् ॥
आचार्योपासनं भद्रे मद्बुद्धया मायया सदा ।
पञ्चमं पुण्यशीलत्वं यमादि नियमादि च ॥
निष्ठा मत्पूजने नित्यं षष्ठं साधनमीरितम् ।
मम मन्त्रोपासकत्वं साङ्गं सप्तममुच्यते ॥
मद्भक्तेष्वधिका पूजा सर्वभूतेषु मन्मतिः ।
बाह्यार्थेषु विरागित्वं शमादिसहितं तथा ॥
अष्टमं नवमं तत्त्वविचारो मम भामिनि ।
एवं नवविधा भक्तिः साधनं यस्य कस्य वा ॥

(अध्यात्मरामायण)

इसी नवधा भक्तिको कुछ रूपान्तरमें श्रीगुसाईंजीने इसप्रकार कहा है—

नवधा भगति कहौं तोहि पाहीं ।
सावधान सुनु ? धरु मनमाहीं ॥
प्रथम भगति सन्तनु कर संगा ।
दूसरि रति मम कथा-प्रसंगा ॥

दोहा—गुरु-पद-पङ्कज सेवा, तीसरि भगति अमान ।
चौथी भगति मम गुन-गन, करै कपट तजि गान ॥

मन्त्र जाप मम दृढ़ विस्वासा ।
पंचम भजन सो वेद प्रकासा ॥
छठ दम शील विरति बहुकर्मा ।
निरत निरन्तर सज्जन धर्मा ॥
सप्तम सब मोहिमय जग देखा ।
मोते सन्त अधिक करि लेखा ॥
अष्टम जथा लाभ सन्तोषा ।
सपनेहु नाहिं देखे परदोषा ॥
नवम सरल सबसों छलहीना ।
मम भरोस जिय हर्ष न दीना ॥
नवमहँ जिनके एकउ होई ।
नारि-पुरुष सचराचर कोई ॥
सोइ अतिशय प्रिय भामिनि मोरे ।
सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरे ॥

इसप्रकार भक्तिका वर्णन करनेके बाद भगवान् शवरीको अपना परमपद प्रदान करते हैं।

जोगि-वृन्द दुर्लभ गति जोई।
तो कहँ आजु सुलभ भइ सोई॥

उसी समय दण्डकारण्यवासी अनेक ऋषि मुनि शवरीजीके आश्रममें आगये। मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम और लक्ष्मणने खड़े होकर मुनियोंका स्वागत किया और उनसे कुशल प्रश्न किया। सबने उत्तरमें यही कहा—

त्वद्दर्शनाद्रघुश्रेष्ठ! जाताः स्मो निर्भया वयम्।

हे रघुश्रेष्ठ। आपके दर्शनसे हम सब निर्भय हो गये हैं। प्रभो! हम वड़े अपराधी हैं। इस परम भक्तिमती शवरीके कारण हमने मतङ्ग जैसे महानुभावका तिरस्कार किया। योगिराजोंके लिये भी जो परम दुर्लभ हैं ऐसे आप साक्षात् नारायण जिसके घरपर पधारे हैं वह भक्तिमती शवरी सर्वथा धन्य है। हमने बड़ी भूल की। इसप्रकार सब ऋषि-मुनि पश्चात्ताप करते हुए भगवान्से विनय करने लगे। आज दण्डकारण्यवासी ज्ञानाभिमानियों की आँखें खुलीं!

जब व्रजकी ब्राह्मण-वनिताओंने अपने पति-देवोंकी आज्ञाका उल्लङ्घनकर साक्षात् यज्ञपुरुष श्रीकृष्णकी सेवामें पहुँचकर अनन्य

भक्तिका परिचय दिया था, तब ब्राह्मणोंने एक बार तो बहुत बुरा माना, परन्तु अन्तमें जब उन्हें बोध हुआ तब उन्होंने भी बड़े पश्चात्तापके साथ इसीप्रकार अपनेको धिक्कार देते हुए कहा था:—

धिग्जन्मनस्त्रिवृद्विद्यां धिग्व्रतं धिग्बहुज्ञताम् ।
धिक्कुलं धिक् क्रियादाक्ष्यं विमुखा ये त्वधोक्षजे ॥
नूनं भगवतो माया योगिनामपि मोहिनी ।
यद्वयं गुरवो नृणां स्वार्थे मुह्यामहे द्विजाः ॥
(श्रीमद्भागवत १० म स्कन्ध)

हमारे तीन जन्मोंको (एक गर्भसे, दूसरे उपनयनसे और तीसरे यज्ञदीक्षासे), ब्रह्मचर्यव्रतको, बहुत जाननेको, उत्तम कुलको, यज्ञादि क्रियाओंमें चतुर होनेको बार-बार धिक्कार है, क्योंकि हम श्रीहरिके विमुख हैं। निःसन्देह भगवान्की माया बड़े-बड़े योगियोंको मोहित कर देती है । अहो ! हमलोगोंके गुरु ब्राह्मण कहलाते हैं परन्तु अपने ही सच्चे स्वार्थसे (हरिकी भक्तिमें) चूक गये । अस्तु !

ऋषि-मुनियोंको पश्चात्ताप करते देखकर श्रीलक्ष्मणजीने उनसे कहा—

अहो धन्यतमा यूयं तपोव्रतपरायणाः ।
त्यक्त्वा विषयजं सौख्यं वने वसन्ति निःस्पृहाः ॥
भवद्भिरेव लोकोऽयं धार्यते सचराचरः ।

महर्षिगण ! आपलोगोंको धन्य है, आप बड़े ही तप-व्रत-परायण हैं, आप सांसारिक विषयजन्य सुखोंको त्यागकर निःस्पृह होकर वनमें निवास करते हैं, आपलोगोंहीके प्रभावसे यह सचराचर जगत् धर्मको धारण कर रहा है ।

इसप्रकारके वाक्योंसे ऋषियोंको कुछ सन्तोष हुआ, इतनेमें एक ऋषिने कहा, 'हे शरणागतवत्सल ! यहाँके सुन्दर सरोवरके जलमें कीड़े क्यों पड़ रहे हैं तथा वह रुधिर-सा क्यों हो गया है?' लक्ष्मणजीने हँसते हुए कहा—

मतङ्गमुनिविद्वेषाद्रामभक्तावमानतः ।
जलमेतादृशं जातं भवतामभिमानतः ॥

मतङ्ग-मुनिके साथ द्वेष करने तथा शबरी-जैसी रामभक्ता साध्वीका अपमान करनेके कारण आपके अभिमानरूपी दुर्गुणसे ही यह सरोवर इस दशाको प्राप्त हो गया है । इसके फिर पूर्ववत् होनेका एक यही उपाय है कि शबरी एक बार फिरसे उसका स्पर्श करे ।

भगवान्‌की आज्ञासे शबरीने जलाशयमें प्रवेश किया और तुरन्त ही जल पूर्ववत् निर्मल हो गया ! यह है भक्तोंकी महिमा !

भगवान्‌ने प्रसन्न होकर फिर शबरीसे कहा कि तू कुछ वर माँग । शबरीने कहा—

यत्त्वां साक्षात्पश्यामि नीचवंशभवाप्यहम् ।
तथापि याचे भगवंस्तव भक्तिः सा दृढा मम ॥

मैं अत्यन्त नीचकुलमें जन्म लेनेपर भी आपका साक्षात् दर्शन कर रही हूँ यह क्या साधारण अनुग्रहका फल है ? तथापि मैं यही चाहती हूँ कि आपकी दृढ़ भक्ति सदा बनी रहे ! भगवान्‌ने हँसते हुए कहा 'तथास्तु' !

शबरीने पार्थिव देह परित्याग करनेके लिये भगवान्‌की आज्ञा चाही, भगवान्‌ने उसे आज्ञा दे दी । शबरी मुनिजनोंके सामने ही देह छोड़कर परमधामको प्रयाण कर गयी और सब तरफ जय-जयकारकी ध्वनि होने लगी । प्रिय पाठक और पाठिकाएँ ! हम और आप भी एक वार मिलकर कहें 'बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय ।'

परम भक्तिमती मीराबाई   'राणा सांप पिटारीमें भेज्यो, सालिगराम भयो'

मीराबाई

सदृश गोपिन प्रेम प्रकट कलियुग ही दिखायो ।
निर-अङ्कुश अति निडर रसिक-यश रसना गायो ॥
दुष्टन दोष विचारि मृत्युको उद्यम कीयो ।
बार न बाँको भयो गरल अमृत ज्यों पीयो ॥
भक्ति निशान बजाइकै, काहूतें नाहीं लजी ।
लोक-लाज कुल-शृंखला तजि मीरा गिरधर भजी ॥

(नाभाजी)

मीराबाईका नाम कौन नहीं जानता ? जिस भक्तशिरोमणि राजपूत-रमणीकी गुण-गाथाको गा-गाकर आज लाखों जन भगवत्प्रेमको प्राप्त होते हैं, जिसके प्रेमपूरित पुनीत पदोंका गान कर अगणित नर-नारी भक्तिरसके पावन-प्रवाहमें बह जाते हैं, जिस प्रातःस्मरणीया देवीके अनुपम चरित्रका अनुसरण कर प्रेमी भक्त अपने प्रियतम श्यामसुन्दरके नव-नील-नीरद मुखकमलका दर्शन कर कृतार्थ होते हैं, उस भगवत्प्रेमकी जीती जागती मूर्तिका किञ्चित् यशोगान कर

आज यह अधम लेखक भी कृतार्थ होना चाहता है, क्योंकि भगवान्, भक्त-यश-वर्णन और कीर्तनसे जितने प्रसन्न होते हैं उतने अपने गुणोंके कीर्तनसे नहीं होते।

भारतकी नारी-जातिको धन्य करनेवाली भक्तिपरायणा मीराबाईका जन्म मारवाड़के कुड़की नामक ग्राममें संवत् १५५८ के लगभग हुआ था, इनके पिताका नाम राठौड़ श्रीरतनसिंहजी था, मीरा अपने पिता-माताके एकलौती लड़की थी, बड़े लाड़-चावसे पाली गयी थी। मीराके चित्तकी वृत्तियाँ बचपनसे ही भगवान्‌की ओर झुकी हुई थीं। एक दिन उनके घरमें एक साधु आये, साधुके पास भगवान्‌की एक सुन्दर मूर्ति थी। मीराने साधुसे कहकर वह मूर्ति ले ली। साधुने मूर्ति देकर मीरासे कहा कि 'ये भगवान् हैं' इनका नाम श्रीगिरधरलालजी है। तू प्रतिदिन प्रेमके साथ इनकी पूजा किया कर।' सरल-हृदया बालिका मीरा सच्चे मनसे भगवान्‌की सेवा करने लगी, मीरा इस समय दस वर्षकी थी। परन्तु दिनभर उसी मूर्तिको नहलाने, चन्दन-पुष्प चढ़ाने, भोग लगाने और आरती उतारने आदिके काममें लगी रहती। सूरदासजीका एक पद उसने याद कर लिया और उसे भगवान्‌के सामने बारम्बार गाया करती!

जो विधना निज वश करि पाऊँ।
तो सब कहो होय सखि मेरो, अपनी साध पुराऊँ॥

लोचन रोम-रोम प्रति माँगौं पुनि पुनि त्रास दिखाऊँ।
इकटक रहैं पलक नहिं लागे, पद्धति नई चलाऊँ॥
कहा करौं छवि-राशी श्यामघन लोचन द्वै न अघाऊँ।
ये ते पर ये निमिष सूर सुनु यह दुख काहि सुनाऊँ॥

मीरा यह पद गाते-गाते कई बार बेहोश हो जाती। शायद उसे 'छविराशि श्यामघन' के दर्शन होते होंगे!

इस समय मीरा स्वयं भी पद-रचना करने लगी, जब वह स्वरचित सुन्दर पदोंको भगवान्‌के सामने मधुर स्वरोंमें गाती तो प्रेमका प्रवाह-सा बह जाता। सुननेवाले नर-नारियोंके हृदयमें प्रेम उमड़ने लगता। इसप्रकार भावतरङ्गोंमें पाँच साल बीत गये। संवत् १५७३ में मीराका विवाह चित्तौड़के सीसोदिया-वंशमें महाराणा सांगाजीके ज्येष्ठ कुमार भोजराजके साथ सम्पन्न हुआ। विवाहके समय एक अद्भुत घटना हुई, कृष्णप्रेमकी साक्षात् मूर्ति मीराने अपने श्याम श्रीगिरधरलालजीको पहलेसे ही मण्डपमें विराजित कर दिया और कुमार भोजराजके साथ फेरा लेते समय श्रीगिरधरगोपालजीके साथ भी फेरे ले लिये। मीराने समझा कि आज भगवान्‌के साथ मेरा विवाह भी हो गया।

मीराकी माताको इस घटनाका पता था, उसने मीरासे कहा कि 'पुत्री! तैंने वह क्या खेल किया? मीराने मुसकराते हुए कहा—

माई म्हांने सुपनेमें वरी गोपाल ।
राती पीती चुनड़ी ओढ़ी मेंहँदी हाथ रसाल ॥
काँई औरको वरूँ भाँवरी म्हांके जगजंजाल ।
मीराके प्रभु गिरधरनागर करो सगाई हाल ॥

मीराके भगवत्प्रेमके इस अनोखे भावको देखकर माता बड़ी प्रसन्न हुई। जब सखियोंको इस बातका पता लगा तो उन्होंने दिल्लगी करते हुए मीरासे गिरधरलालजीके साथ फेरे लेनेका कारण पूछा, मीराने कहा—

ऐसे वरको के वरूँ जो जन्मै और मरजाय ।
वर वरिये गोपालजी म्हारो चुड़लो अमर होजाय ॥

प्राणोंकी पुतली मीराको माता-पिताने दहेजमें बड़ा धन दिया, परन्तु मीराका मन उदास ही देखा, तो माताने पूछा कि 'बेटी ! तू क्या चाहती है ? तुझे जो चाहिये सो ले ले ।' मीराने मातासे कहा—

दे री माई अब म्हांको गिरधरलाल ।
प्यारे चरणकी आन करति हौं, और न दे मणि लाल ॥
नातो सागो परिवारो सारो, मन लगे मानों काल ।
मीराके प्रभु गिरधरनागर, छवि लखि भई निहाल ॥

भक्तको अपने भगवान्के अतिरिक्त और क्या चाहिये ? माताने बड़े प्रेमसे गिरधरलालजीका सिंहासन मीराकी पालकीमें

रखवा दिया। कुमार भोजराज नववधूको लेकर राजधानीमें आये। घर-घर मंगल-बधाइयाँ बँटने लगीं। रूपगुणवती बहूको देखकर सास प्रसन्न हो गयी। कुलाचारके अनुसार देवपूजाकी तैयारी हुई, परन्तु मीराने कहा कि मैं तो एक गिरधरलालजीके सिवा और किसीको नहीं पूजूँगी। सास बड़ी नाराज हुई, मीराको दो-चार कड़ी मीठी भी सुनायी परन्तु मीरा अपने प्रणपर अटल रही।

राजपूतानेमें प्रतिवर्ष गौरीपूजन हुआ करता है। छोटी-छोटी लड़कियाँ और सुहागिन स्त्रियाँ सुन्दर रूप-गुण-सम्पन्न वर और अचल सुहागके लिये बड़े चावसे 'गौर'-पूजा करती हैं। मीरासे भी गौर पूजनेको कहा गया, मीराँने साफ जवाब दे दिया। सारा रनिवास मीरासे नाराज हो गया। सास और ननद ऊदाबाईने मीराको बहुत समझाया परन्तु वह नहीं मानी, उसने कहा,—

ना म्हें पूजा गौरज्याजी ना पूजा अनदेव।
म्हें पूजा रणछोड़जी सासु थे कांई जाणो भेव॥

सास बड़ी नाराज हुई। समवयस्क सहेलियोंने मीरासे कहा कि 'बहिन! यह तो सुहागकी पूजा है सभीको करनी चाहिये।' मीराने उत्तर दिया कि 'बहिनो! मेरा सुहाग तो सदा ही अचल है। जिसको अपने सुहागमें सन्देह हो वह गिरधरलालजीको छोड़-

कर दूसरेको पूजे।' मीराके इन शब्दोंका मर्म जिसने समझा वह तो धन्य हो गयी परन्तु अधिकांश स्त्रियोंको यह बात बहुत बुरी लगी!

मीराकी इस भक्तिभावनाको देखकर कुमार भोजराज पहले तो कुछ नाराज हुए परन्तु अन्तमें मीराके सरल हृदयकी शुद्ध भक्तिसे उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने मीराके लिये अलग श्रीरणछोड़जीका मन्दिर बनवा दिया। कुमार भोजराज एक साहसी वीर और साहित्यप्रेमी युवक थे। मीराकी पदरचनासे उन्हें बड़ा हर्ष होता और इसमें वे अपना गौरव मानते। मीराका प्रेम-पुलकित मुखचन्द्र वे जब देखते तभी उनका मन मीराकी ओर खिंच जाता। जब मीरा नये नये पद बनाकर पतिको गाकर सुनाती, तब कुमारका हृदय आनन्दसे भर जाता।

यद्यपि मीरा अपना सच्चा पति केवल श्रीगिरधरलालजीको ही मानती थी और प्रायः अपना सारा समय उन्हींकी सेवामें लगाती परन्तु उसने अपने लौकिक पति कुमार भोजराजको कभी नाराज नहीं होने दिया। अपने सुन्दर और सरल स्वभावसे तथा निस्वार्थ सेवाभावसे उसे सदा प्रसन्न रक्खा। कहते हैं कुछ समय बाद मीराकी अनुमति लेकर कुमारने दूसरा विवाह कर लिया था। मीराको इस विवाहसे बड़ी प्रसन्नता हुई। उसे इस बातका सदा संकोच रहता था कि मैं स्वामीकी मनोकामना पूरी नहीं कर सकती। अब दूसरी रानीसे पतिको परितृप्त देखकर और

पतिके भी परम पति परमात्माकी सेवामें अपना पूरा समय लगनेकी सम्भावना समझकर मीराको बड़ा आह्लाद हुआ ।

मीरा अपना सारा समय भजन-कीर्त्तन और साधु-सङ्गतिमें लगाने लगी। वह कभी विरहसे व्याकुल होकर रोने लगती,कभी ध्यानमें साक्षात्कार कर हँसती, कभी प्रेमसे नाचती, भूख-प्यासका कोई पता नहीं ! लगातार कई दिनोंतक बिना खाये-पीये प्रेम-समाधिमें पड़ी रहती । कोई समझाने आता तो उससे भी केवल कृष्ण-प्रेमकी ही बातें करती। दूसरी बात उसे सुहाती ही नहीं । शरीर दुर्बल हो गया, घरवालोंने समझा बीमार है, वैद्य बुलाये गये, मारवाड़से पिता भी वैद्य लेकर आये । मीराने कहा—

हेरी मैं तो राम दीवानी, मेरा दरद न जाणे कोय ।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस विधि सोणा होय ॥
गगन मण्डलपै सेज पियाकी, किसविध मिलणा होय।
घायलकी गत घायल जाने, की जिन लाई होय ॥
जौहरकी गत जौहरि जाने, की जिन जौहर होय ।
दरदकी मारी बन बन डोलूँ, वैद मिल्या नहिं कोय ।
मीराकी प्रभु पीड़ मिटैगी, जब बैद साँवलिया होय ॥

वैद्य देख गये । परन्तु इन अलौकिक प्रेमके दीवानोंकी दवा बेचारे इन वैद्योंके पास कहाँसे आयी ? विरहकातरा मीराने श्याम-वियोगमें यह पद गाया—

नातो नाँवको जी म्हाँसूँ तनक न तोड्यो जाय॥टेक॥
पाना ज्यूँ पीली पड़ीरे, लोग कहें पिंड रोग।
छाने लांघण म्हें कियारे, राम मिलणके जोग॥
बाबल वैद बुलाइयारे, पकड़ दिखाई म्हारी बाँह।
मूरख वैद मरम नहिं जाणै, कसक कलेजे माँह॥
जाओ वैद घर आपणे रे, म्हारो नाँव न लेय।
मैं तो दाझी विरहकी रे, काहेकूँ औषध देय॥
मांस गालि गालि छीजिया रे, करक रह्या गल आय।
आँगलियाकी मूँदड़ी म्हारे, आवण लागी बाँह॥
रह-रह पापी पपीहड़ा रे, पियको नाँव न लेय।
जो कोई विरहण साम्हले रे, पिव कारण जिव देय॥
छिन मन्दिर छिन आँगणे रे, छिन छिन ठाढ़ी होय।
घायल ज्यूँ घूमूँ खड़ी, म्हारो विथा न बूझे कोय॥
काढ कलेजो मैं धरूँ रे, कागा तू लैजाय।
जिण देसाँ म्हारो हरि बसे रे, वाँ देखत तूँ खाय॥
म्हारे नातो नामको रे, और न नातो कोय।
मीरा व्याकुल विरहणी, हरि दर्शण दीज्यो मोय॥

कैसी उत्कण्ठा है ? कैसा उन्माद है ? कितनी मनोहर लालसा है ? भगवान् इसीसे वश होते हैं, इसीसे वे बिक जाते हैं, मीराने इसी मूल्यपर उनको खरीदा था। मीराने कहा है—

गोविन्द लीन्यो मोल, माई मैं गोविन्द लीन्यो मोल।
कोई कहै सस्तो कोई कहै महँगो लीन्यो तराजू तोल
कोई कहै घरमें, कोई कहे बनमें, राधाके संग किलोल।
मीराके प्रभु गिरधर नागर आवत प्रेमके मोल ॥

जिसका मन-भ्रमर उस श्यामसुन्दरके चरणारविन्द-मकरन्द पानमें रम जाता है उसे दूसरी बात कैसे अच्छी लग सकती है ? जिसने एक बार उस अनूपरूप-राशिका स्वप्नमें भी दर्शन कर लिया, जिसके हृदयमें उस पुनीत प्रेमका जरा-सा भी अंकुर उत्पन्न हो गया, जिसने उस मधुर प्रेम-सुधाका भूलकर भी रसास्वादन कर लिया वह कभी भी इस जगत्के भोगोंकी ओर नहीं देख सकता !

रमा विलास राम अनुरागी ।
तजत वमन इव नर बड़ भागी ॥

नवयुवती राजपुत्री और राजवधू मीराने भी इसी प्रेमरसका पान करनेके कारण द्वापरकी गोपरमणियोंकी भाँति अपना सर्वस्व उस विश्वविमोहन मोहनके चरणोंमें अर्पण कर दिया, संसारका

कोई भी प्रलोभन या भय उसे विचलित नहीं कर सका । मीरा अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे गद्गद कण्ठ होकर रणछोड़जीसे प्रार्थना करने लगी—

मीराको प्रभु साची दासी बनाओ ।
झूठे धन्धोंसे मेरा फन्दा छुड़ाओ ॥
लूटे ही लेत विवेकका डेरा ।
बुधि बल यदपि करूँ बहुतेरा ॥
हाय ! राम नहिं कछु बस मेरा ।
मरती बिवस प्रभु धाओ धाओ ॥
धर्म उपदेश नित ही सुनती हूँ ।
मन कुचालसे बहु डरती हूँ ॥
सदा साधु सेवा करती हूँ
सुमिरण ध्यानमें चित धरती हूँ ॥
भक्ति मार्ग दासीको दिखाओ ।
मीराको प्रभु साँची दासी बनाओ ॥

विवाहके बाद इसप्रकार भक्तिके प्रवाहमें दश साल बीत गये । संवत् १५८३ में कुमार भोजराजका देहान्त हो गया । महाराणा सांगाजी भी परलोकवासी हो गये, राजगद्दीपर मीराके दूसरे देवर विक्रमाजीत आसीन हुए । मीरा भगवत्प्रेमके कारण वैधव्यके दुःखसे

दुःखित नहीं हुई। साधु महात्माओंका संग बढ़ता गया, मीराके भक्तिका प्रवाह उत्तरोत्तर जोरसे बहने लगा। राणा विक्रमाजीतको मीराका रहन-सहन, बिना किसी रुकावटके साधुवैष्णवोंका महलोंमें आना जाना और चौबीसों घण्टे कीर्त्तन होना बहुत अखरने लगा। उन्होंने मीराको समझानेकी बड़ी चेष्टा की। चम्पा और चमेली नामकी दो दासियाँ इसी हेतुसे मीराके पास रक्खी गयीं, राणाकी बहिन ऊदाबाई भी मीराको समझाती रही परन्तु मीरा अपने मार्गसे जरा भी नहीं डिगी। मीराजीने समझानेवाली सखियोंसे पहले तो नम्रतापूर्वक अपना संकल्प सुनाया, अन्तमें स्पष्ट कह दिया।

बरजी मैं काहूकी न रहूँ।

सुनोरी सखी तुम चेतन होके मनकी बात कहूँ॥
साधु संगत कर हरि सुख लेऊँ जग सूँ मैं दूर रहूँ।
तन धन मेरो सबही जाओ भल मेरो सीस लहूँ॥
मन मेरो लाग्यो सुमरण सेती सबका मैं बोल सहूँ।
मीराके प्रभु गिरधरनागर सतगुरु शरण गहूँ॥

सखियोंने कहा—'मीराजी! आप भगवान्‌से प्रेम करती हैं तो करें, इसमें किसीको कोई आपत्ति नहीं परन्तु कुलकी लाज छोड़कर दिनरात साधुओंकी मण्डलीमें रहना और नाचना गाना उचित नहीं। इससे महाराणा बहुत नाराज हैं।' मीराने कहा—

सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हारो कँइ करलेसी ।
म्हे तो गुण गोविंद गास्यां हो माई ॥
राणाजी रूठ्यां तो वाँरो देश रखासी ।
हरिजी रूठ्याँ किठे जास्याँ हो माई ॥
लोक लाजकी काण न मानाँ ।
निरभै निसाण घुरास्याँ हो माई ॥
राम-नामकी झचाझ चल्यास्याँ ।
भवसागर तिर जास्याँ हो माई ।
मीरा शरण साँवल गिरधरकी ।
चरणकमल लपटास्याँ हो माई ॥

कैसा अटल निश्चय है ! कितना अचल विश्वास है ! कितनी निर्भयता है ? कैसा अद्भुत त्याग है ? ऊदा और दासियाँ आयी थीं समझानेको, परन्तु मीराकी शुद्ध प्रेमाभक्तिको देखकर उनका चित्त भी उसी ओर लग गया । वे भी मीराके इस गहरे प्रेम-रंगमें रँग गयीं । अन्तमें राणाने चरणामृतके नामसे मीराके पास विषका प्याला भेजा, चरणामृतका नाम सुनते ही मीरा बड़े प्रेमसे उसे पी गयी । भगवान्‌ने अपना विरद सम्हाला, विष अमृत हो गया, मीराका बाल भी बाँका नहीं हुआ । बलिहारी है ! भगवत्कृपासे क्या नहीं होता ?

विषरो प्यालो भेजियो, मीराजीरे धाम। कर चरणाम्रृत पीगयी, लेकर हरिको नाम ॥

गरल सुधा रिपु करै मिताई ।

गोपद सिन्धु अनल सितलाई ॥

मीराने प्रेममें मग्न होकर गाया—

राणाजी जहर दियो मैं जानी ।

जिन हरि मेरो नाम निवेरयो,

छरयो दूध अरु पानी ॥

जबलग कंचन कसियत नाहीं,

होत न बाहर बानी ॥

अपने कुलको परदो करियो,

मैं अबला बौरानी ॥

श्वपच भक्त वारौं तन-मनते,

हौं हरि हाथ बिकानी ॥

मीरा प्रभु गिरधर भजिबेको,

सन्त चरण लिपटानी ॥

मीरा नाचने लगी—

'पग बाँध घुंघुरु मीरा नाची रे—'

दासियोंने जाकर यह समाचार राणाजीको सुनाया, वे तो दंग रह गये। कलियुगमें यह दूसरा प्रह्लाद कहाँसे आ गया ?

मीराके आठों पहर भजन-कीर्तनमें बीतने लगे। नींद-भूखका कोई पता नहीं! शरीरकी सुधि नहीं, वह दिनभर रोती और गाया करती।

घड़ी एक नहिं आवड़ै, तुम दरशण बिन मोय।
तुम हो मेरे प्राणजी, कैसे जीवण होय॥
धान न भावे नींद न आवे, विरह सतावे मोय।
घायलसी घूमत फिरूँ रे, मेरा दरद न जाने कोय॥
दिवस तो खाय गमाइया रे, रैण गमाई सोय।
प्राण गमाया झूरताँरे नैण गमाया रोय॥

मीरा रातको मन्दिरके पट वन्द करके भगवान्‌के आगे उन्मत्त होकर नाचती। मानो भगवान् प्रत्यक्ष प्रकट होकर मीराके साथ वातचीत करते। महलोंमें तरह तरहकी चर्चा होने लगी। सखियोंने कहा, 'मीरा, तुम युवती स्त्री हो, दिनभर किसकी वाट देखती हो, किसके लिये यों क्षण क्षणमें सिसक सिसककर रोया करती हो।' मीरा भावोन्मत्त होकर गाने लगी—

दरस बिन दूखन लागे नैन।
जबसे तुम बिछुरे मेरे प्रभुजी,
कबहुँ न पायो चैन।

शब्द सुनत मेरी छतियाँ कम्पैं,

मीठे लागै बैन।

एक-टकटकी पंथ निहारूँ,

भई छमासी रैन॥

बिरह बिथा कासूँ कहूँ सजनी,

बह गई करवत नैन।

मीराके प्रभु कब रे मिलोगे,

दुख मेटन सुख दैन॥

दासियोंने समझाया कि 'बाईजी! यह सारी बात तो ठीक है परन्तु इस तरह करनेसे आपका कुल लज्जित होता है।' मीराने कहा, 'क्या करूँ मेरे वशकी बात नहीं है।'

आली, री, मेरे नैनन बान पड़ी॥

चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत,

उर बिच आन अड़ी॥

कबकी ठाढ़ी पंथ निहारूँ,

अपने भवन खड़ी।

मीरा गिरधर हाथ बिकानी,

लोक कहैं बिगड़ी॥

कितना पवित्र भाव है ? परन्तु *'जाकी जेती बुद्धि है, तेती कहत बनाय'* के अनुसार लोगोंने कुछका कुछ बना दिया। मनुष्य प्रायः अपने ही मनके पापका दूसरे पर आरोप किया करता है। किसीने जाकर राणाजीके कान भर दिये, उन्हें समझा दिया कि मीराका तो चरित्र भ्रष्ट हो गया है। दिनभर तो वह विरहिणीकी तरह रोया करती है और रातको आधीरातके समय उसके महलसे किसी दूसरे पुरुष-की आवाज सुनाई देती है। हो न हो कुछ न कुछ दालमें काला अवश्य ही है।

राणाको यह बात सुनकर बड़ा क्रोध हुआ, उसी दिन रातको वह आधी रातके समय नंगी तलवार हाथमें लेकर मीराके महलमें गये, किवाड़ बन्द थे। राणाको भी अन्दरसे किसी पुरुष-की आवाज सुन पड़ी, नहीं कह सकते कि यह राणाके दृढ़ संकल्पका फल था या भगवान्‌की लीला थी ? खैर, राणाने अकस्मात् किवाड़ खुलवाये। देखते हैं तो मीरा प्रेम-समाधिमें बैठी है। दूसरा कोई नहीं है। राणाने मीराको चेत कराकर पूछा कि 'बताओ! तुम्हारे पास दूसरा कौन था ?' मीराने झट्से जवाब दिया 'मेरे छैलछबीले गिरधरलालजीके सिवा और कौन होता ? जगत्‌में दूसरा कोई हो तो आवे' राणा इन वचनोंका मर्म क्यों समझने लगे ? उन्होंने बड़ी सावधानीसे सारे महलमें

खोज की परन्तु कहीं कोई नहीं दीख पड़ा, तब लज्जित होकर लौटने लगे। मीराने पद गाया—

राणाजी! मैं साँवरे रंग राची।

सज सिणगार पद बाँध घूँघरू,
लोक लाज तजि नाची॥

गई कुमति लहि साधुकी संगति,
भक्ति रूप भइ साँची।

गाय गाय हरिके गुण निशिदिन,
काल-व्याल तें बाँची॥

उन बिनु सब जग खारो लागत,
और बात सब काँची।

मीराके प्रभु गिरधर नागर,
भक्ति रसीली जाँची॥

दूसरा पद गाया—

बसो मेरे नैननमें नंदलाल।

मोहिनी मूरति सॉवरि सूरति, नैना बने बिशाल।

अधर-सुधा रस मुरली राजत, उर बैजन्ती-माल॥

छुद्र घण्टिका कटि-तट शोभित, नूपुर शब्द रसाल।

मीरा प्रभु सन्तन सुखदाई, भक्त-बछल गोपाल॥

राणाके विलास-विभ्रम-रत, मोह-आवृत मलिन मनपर मीराकी अमृत वाणीका कोई असर नहीं हुआ, राणा वापस लौट गये। मीरा उसी तरह 'लोक लाज कुलकान' को वहाकर वेधड़क हरिचर्चा करने लगी। एक दिन एक भण्ड साधुने आकर मीरासे कहा कि 'मुझे गिरधरलालजीने तुम्हारे पास भेजा है और तुम्हें मेरे साथ अंग-संगके लिये आज्ञा दी है।' मीराने कहा—'अच्छी वात है पहले आप भोजन कर लीजिये।' मीराने आदरपूर्वक उसे भोजन कराया और फिर साधुओंकी मण्डलीमें पलंग विछाकर वोली कि 'महाराज आइये' दुरात्माने चुपकेसे मीराके पास आकर कहा कि 'स्त्री-पुरुषका संग कहीं यों इतने लोगोंके सामने होता है?' मीराने कहा, 'महाराज! ऐसा कौन-सा एकान्त स्थल है जहाँ मेरे गिरधरलालजी नहीं विराजते हों, मैं तो जहाँ देखती हूँ, वहीं खड़े दीखते हैं। फिर इस शरीरमें तो अनेक देवताओंका निवास है। चन्द्र, सूर्य, तारागण हमारे सम्पूर्ण कर्मोंके साक्षी हैं। यमराजके दूत तो हिसाव ठीक रखनेके लिये सदा ही घूमते रहते हैं। जव इतने लोग देखेंगे तो फिर इस साधु-मण्डलीसे ही आपको लज्जा क्यों होती है?' मीराने जव सवके सामने जोरसे यों कहा तव वह वड़ा लज्जित हो गया। लोग उसे धिक्कारने लगे, उसका मोह भंग हो गया, मीराके चरणोंमें पड़कर उसने अपने पापके लिये

क्षमा माँगी और उद्धारका उपाय पूछा। मीराने बड़े प्रेमसे कहा—

मनरे, परसि हरिके चरण।
सुभग शीतल कमल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण।
जिन चरण प्रह्लाद परसे, इन्द्र-पदवी-धरण॥
जिन चरण ध्रुव अटल कीन्हें, राखि अपनी सरण।
जिन चरण ब्रह्माण्ड भेंट्यो नख सिखा सिरी धरण॥
जिन चरण प्रभु परसि लीनो तरी गौतम-घरण।
जिन चरण काली-नाग नाथ्यो गोप-लीला-करण॥
जिन चरण गोवर्द्धन धारयो, गर्व मघवा हरण।
दासि मीरा लाल गिरधर अगम तारण तरण॥

फिर कहा—

राम राम रस पीजै मनुआँ, राम राम रस पीजै।
तज कुसंग सतसंग बैठ नित, हरि चरचा सुन लीजै॥
काम क्रोध मद लोभ मोहकूं, बहा चित्तसे दीजै।
मीराके प्रभु गिरधर नागर, ताहिके रंगमें भीजै॥

मीराके दिव्य उपदेशसे वह नामधारी साधु असली साधु बन गया!

कहते हैं कि मीराके पदोंकी प्रशंसा सुनकर एक बार तानसेनको साथ लेकर बादशाह अकबर वैष्णवके भेषमें मीराके पास आये थे और मीराकी भक्तिका अद्‌भुत प्रभाव देखकर रणछोड़जीके लिये एक अमूल्य हार देकर लौट गये थे। इससे भी लोगोंमें बड़ा चर्चा फैली। राणाने क्रोधित होकर मीराके नाशके लिये एक पिटारीमें काली नागिनको बन्द करके शालिग्राम-जीकी मूर्तिके नामसे उसके पास भेजा। शालिग्रामका नाम सुनते ही मीराके नेत्र डबडबा आये। उसने बड़े उत्साहसे पिटारी खोली, देखती है तो सचमुच उसमें एक श्रीशालिग्रामजी-की सुन्दर मूर्ति और एक मनोहर पुष्पोंकी माला है। मीरा प्रभुके दर्शनकर नाचने लगी।

मीरा मगन भई हरिके गुण गाय ॥

साँप पिटारा राणा भेज्या, मीरा हाथ दिया जाय।

न्हाय धोय जब देखन लागी, सालिगराम गयी पाय ॥

× × × ×

मीराके प्रभु सदा सहाई, राखे विघ्न हटाय।

भजन भावमें मस्त डोलती, गिरिधर पै बलिजाय ॥

राणाजीने और भी अनेक उपायोंसे उसे डिगाना चाहा परन्तु मीरा किसी तरह भी नहीं डिगी। जब राणा बहुत सताने लगे तब मीराने गुसाईं तुलसीदासजीको एक पत्र लिखा।

स्वस्ति श्री तुलसी गुण भूषण दूषण हरण गोसाँई।
बारहिं बार प्रणाम करहुं अब हरहु शोक समुदाई॥
घरके स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई।
साधुसंग और भजन करत मोहिं देत कलेश महाई॥
सो तो अब छूटत नाहिं क्योंहूं लगी लगन बरियाई।
बालपनेमें मीरा कीन्हीं गिरधरलाल मिताई॥
मेरे मात तात सम तुम हो हरिभक्तन सुखदाई।
मोकों कहा उचित करिबो अब सो लिखिये समुझाई॥

गुसाईंजी महाराजने उत्तरमें यह प्रसिद्ध पद लिख भेजा—

जाके प्रिय न राम बैदेही।
सो छाँड़िये कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही।
नातें नेह रामके मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं॥
अञ्जन कहा आँख जेहि फूटै बहुतक कहौं कहाँ लौं।
तुलसी सों सब भाँति परमहित पूज्य प्राणतें प्यारो।
जासों होय सनेह रामपद एतो मतो हमारो॥

इस पत्रको पाकर मीराने घर छोड़कर वृन्दावन जानेका

निश्चय कर लिया* राणाजीको तो इस बातसे बड़ी प्रसन्नता हुई परन्तु ऊदाजी और मीराकी अन्यान्य प्रेमिका सखियोंको बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने मीराको रोकना चाहा, मीराने उत्तर दिया—

बाला मैं वैरागण हूँगी।

जिन भेषाँ म्हारो साहिब रीझे, सोही भेष धरूँगी॥

शील संतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी।

जाको नाम निरंजन कहिये, ताको ध्यान धरूँगी॥

गुरूके ज्ञान रँगू तन कपड़ा, मन मुद्रा पैरूँगी।

प्रेम प्रीतसू हरिगुण गाऊं, चरणन लिपट रहूँगी॥

या तनकी मैं करूँ कींगरी, रसना नाम कहूँगी।

मीराके प्रभु गिरधर नागर, साधां संग रहूँगी॥

मीराने किसीकी कुछ भी नहीं सुनी, वह झटपट महलसे निकलकर वृन्दावनकी ओर चल पड़ी। प्रीतमकी खोजमें जानेवाले कभी पीछेको नहीं देखा करते, मीरा भी आज उस परम प्यारे श्यामसुन्दरकी खोजमें उन्मादिनी होकर दौड़ रही है। धन्य

---

*इतिहासज्ञ सज्जन कहते हैं कि मीराजीका श्रीगोस्वामीसे कोई पत्र-व्यवहार नहीं हुआ था। कारण, गोस्वामीजी मीराजीके बाद हुए हैं! जो कुछ भी हो, दोनों भक्तोंके दोनों पद बड़े उपदेशप्रद हैं!

है ! मीरा वृन्दावन पहुँची और वहाँ श्यामसुन्दरके प्रत्यक्ष दर्शनके लिये विरहके गीत गाती कुञ्ज-कुञ्जमें भटकने लगी। जो उसे देखता, वही भक्तिरससे भीग जाता था। मीरा गाती थी—

राम मिलनको घणो उमावो,
नित उठ जोऊँ बाटड़ियाँ।
दरसण बिन मोहिं पल न सुहावै,
कल न पड़त है आँखड़ियाँ॥
तड़फ-तड़फ कर बहु दिन बीते,
पड़ी बिरहकी फाँसड़ियाँ।
अब तो बेग दया कर साहेब,
मैं हूँ थाँरी दासड़ियाँ॥
नैन दुखी दरसणको तरसै,
नाभि न बैठे साँसड़ियाँ।
रात-दिवस यह आरत मेरे,
कब हरि राखे पासड़ियाँ॥
लगी लगन छूटनकी नाहीं,
अब क्यूँ कीजै आँटड़ियाँ।
मीराके प्रभु गिरधर नागर,
पूरो मनकी आसड़ियाँ॥

मीरा रो रोकर पुकारती—

जैसे जलके शुष्क होय तें जिये न मीन विचारे ।
किरपा कीज्यो दर्शन दीज्यो मीरा प्राण दुलारे ॥
तुम्हरे कारण सब सुख छोड्या अब मोहिं क्यूँ तरसावो।
अब छोड्याँ नाहिं बनैं प्रभूजी चरणाँ पास बुलाओ॥

प्रेमरसमें छकी हुई मीरा यों विरहके गीत गाती फिरती। जब भक्त भगवान्‌के लिये व्याकुल होते हैं तब भगवान् भी उनसे मिलनेके लिये वैसे ही व्याकुल हो उठते हैं। एक दिन मीरा गा रही थी—

बंसीवारा आज्यो म्हारे देश ।
थाँरी साँवरी सूरत वालो भेस ॥
आऊँ आऊँ कर गया साँवरा,
कर गया कौल अनेक ।
गिणताँ गिणताँ घसगई जी,
म्हाँरी आंगलियाँकी रेख ।
मैं बैरागण आदिकी जी,
थार म्हारे कदको सनेस ।
बिन पाणी बिन साबण साँवरा,
हो गई धोय सफेद ॥

जोगण होकर जंगल हेरूँ,
तेरो नाम न पायो भेस ।
तेरी सुरतके कारणे मैं तो,
धारथा छे भगवाँ भेस ॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै,
घूँघरवाला केस ।
मीराके प्रभु गिरधर नागर,
मिल्यां मिटैगो कलेस ॥

भक्त भगवान्‌को बाध्य कर लेते हैं । मीराके निकट बाध्य होकर भगवान्‌को आना पड़ा । उस मनोहर-छबिको निरख मीरा मोहित होगयी । नाच-नाचकर गाने लगी—

आजु मैं देख्यो गिरधारी ।
सुन्दर बदन मदनकी शोभा चितवन अनियारी ॥
बजावत बंसी कुञ्जनमें ।
गावत ताल तरंग रंग ध्वनि नचत ग्वाल-गनमें ॥
माधुरी मूरति वह प्यारी ।
बसी रहै निसिदिन हिरदै बिच टरे नहीं टारी ॥
वाहि पर तन मन है वारी ।
वह मूरति मोहिनी निहारत लोक-लाज डारी ॥

तुलसी वन कुञ्जन संचारी ।
गिरधर लाल नवल नट-नागर मीरा बलिहारी ॥

मीरा प्रेमरसमें छककर गाने लगी—

जबसे मोहिं नन्दनँदन दृष्टि पर्‌यो माई ।
तबतें परलोक-लोक कछू ना सोहाई ॥
मोरमुकुट चन्द्रिका सुशीश मध्य सोहै ।
केसरको तिलक भाल तीनि लोक मोहै ॥
साँवरो त्रिभंग अंग चितवनिमें टोना ।
खंजन औ मधुप मीन भूलै मृग छौना ॥
अधर विम्ब अरुण नयन मधुर मंद हासी ।
दशन दमक दाड़िम द्युति दमके चपलासी ॥
क्षुद्र घंटिका अनूप नूपुर-ध्वनि सोहै ।
गिरधरके चरण कमल मीरा मन मोहै ॥

उस रूपराशिको देखकर किसका चित्त उन्मत्त नहीं होता ? जिसने उसे देख पाया, वही पागल होगया ।

'श्यामासहित श्यामको निहारि इन आँखिनतें
मीरा भइ बावरी सुबावरी, सुबावरी ।'

मीरा पागलकी तरह चारों ओर उसकी मधुर छबिका दर्शन करती हुई गाती फिरती है—

मेरे तो गिरधर-गुपाल दूसरो न कोई ॥
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई ।
तात मात भ्रात बन्धु, आपनो न कोई ॥
छाँड़ दई कुलकी कान, का करिहैं कोई ।
संतन ढिग बैठि बैठि, लोक-लाज खोई ॥
चुनरीके किये टूक, ओढ़ लीन्हि लोई ।
मोती मूँगे उतार, बनमाला पोई ॥
अँसुवन जल सींच-सींच, प्रेम बेलि बोई ।
अब तो बेल फैल गई, होनी हो सो होई ॥
दूधकी मथनिया बड़े, प्रेमसे बिलोई ।
माखन जब काढि लियो, छाछ पिये कोई ॥
आई मैं भक्ति काज, जगत देख मोही ।
दासि मीरा गिरधर प्रभु, तारो अब मोही ॥

दूसरा पद—

श्याम म्हाँने चाकर राखोजी, गिरधारीलाल चाकर राखोजी ॥

चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरसन पासूँ।
वृन्दावनकी कुंज-गलिनमें, गोविंदका गुण गासूँ॥
चाकरीमें दरशन पाऊँ, सुमिरन पाऊँ खरची।
भाव-भगाति जागिरी पाऊँ, तीनों बातां सरसी॥
ऊँचे ऊँचे महल बनाऊं, बिच बिच राखूं बारी।
सांवरियांका दरशन पाऊं, पहिर कुसूँमल सारी॥
जोगी आया जोग करनकूँ, तप करणे सन्यासी।
हरी भजनको साधू आये, वृन्दावनके वासी॥
मीराके प्रभु गाहिर गंभीरा, हृदै रहो जी धीरा।
आधी रात प्रभु दर्शन दीन्हो, प्रेम-नदीके तीरा॥

एक बार मीराजी वृन्दावनमें श्रीचैतन्यमहाप्रभुके शिष्य, परम भक्त जीव गोस्वामीजीका दर्शन करनेके लिये गयी। गुसाईंजीने भीतरसे कहला भेजा कि हम स्त्रियोंसे नहीं मिलते। मीराने इसपर उत्तर दिया कि 'महाराज! आजतक तो वृन्दावनमें पुरुष एक श्रीनन्दनन्दन ही थे और सभी स्त्रियाँ थीं, आज आप भी पुरुष प्रकट हुए हैं!' मीराका रहस्यमय उत्तर सुनकर जीवजी महाराज नंगे पैरों बाहर आकर बड़े प्रेमसे मीराजीसे मिले।

मीराके कई पदोंसे पता लगता है कि मीरा भक्तप्रवर रैदासजीकी चेली थी परन्तु एक पदसे यह भी मालूम होता है

कि, मीरा श्रीचैतन्यमहाप्रभुके सम्प्रदायकी वैष्णवी थी और शायद जीव गोस्वामीको उसने अपना गुरु बनाया था। सम्भव है कि दो समयमें दोनोंसे दीक्षा ली हो। श्रीचैतन्यकी स्तुतिका पद इसप्रकार है—

अब तो हरी नाम लौ लागी।
सब जगको यह माखन-चोरा, नाम धर्‌यो बैरागी॥
कित छोड़ी वह मोहन मुरली कित छोड़ी सब गोपी।
मूँड़ मुँड़ाइ डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन टोपी॥
मात जसोमति माखन कारन, बाँधे जाको पाँव।
स्याम किशोर भये नव गौरा, चैतन्य ताको नाँव॥
पीताम्बरको भाव दिखावै, कटि कोपीन कसै।
गौर कृष्णकी दासी मीरा, रसना कृष्ण बसै॥

कुछ काल वृन्दावन निवास कर मीरा द्वारकाजी चली गयी और वहाँ श्रीरणछोड़ भगवान्‌के दर्शन और भजनमें अपना समय बिताने लगी। कहते हैं एक बार चित्तोड़से राणाजी उसे वापस लौटानेके लिये द्वारकाजी गये थे। मीराजीके चले जानेके बाद चित्तोड़में बड़े उपद्रव होने लगे थे। लोगोंने राणाको समझाया कि आपने मीरा-सरीखी भगवद्‌की प्रेमिकाका तिरस्कार किया है उसीका यह फल है,

राणा इसीलिये मीरासे क्षमायाचना कर उसे वापस लौटा कर ले जाना चाहते थे। परन्तु मीराने जाना किसी तरह भी स्वीकार नहीं किया।

मीराने कहा—

राणाजी म्हाँरी प्रीति पुरवली मैं कांई करूं।
राम नाम बिन नहीं आवड़े, हिवड़ो झोला खाय।
भोजनिया नाहिं भावै म्हांने, नींदड़ली नाहिं आय॥

× × × ×

राठौड़ाँकी धीयड़ी जी, सीसोद्याँके साथ।
ले जाती वैकुण्ठको म्हाँरी नेक न मानी बात॥

राणाजीको यों ही वापस लौटना पड़ा। मीरा प्रभुके सामने गाने लगी—

रमैया मैं तो थारे रंग राती।
औरोंके पिया परदेस बसत है, लिख लिख भेजें पाती।
मेरा पिया मेरे हृदय बसत है, रोल करूं दिन राती॥
चूवा चोला पहिर सखी री, मैं झुरमट रमवा जाती।
झुरमटमें मोहिं मोहन मिलिया, घाल मिली गलबाँथी।
और सखी मद पी पी माती, मैं बिन पीयां ही माती।

प्रेम-भठीको मैं मद पीयो, छकी फिरूं दिन राती ॥
सुरत निरतको दिवलो जोयो, मनसा पूरन बाती ।
अगम घाणिको तेल सिंचायो, बाल रही दिन राती ॥
जाऊँनी पीहरिये जाऊँनी सासरिये, हरिसूँ सैन लगाती।
मीराके प्रभु गिरधर नागर, हरि-चरना चित लाती ॥

मीराजी श्रीद्वारकाधीशजीके मन्दिरमें आकर प्रेममें उन्मत्त होकर गाने लगी ।

सजन सुध ज्यों जानो त्यों लीजै ।
तुम बिन मेरे और न कोई कृपा रावरि कीजै ॥
दिन नहिं भूख रैन नाहिं निद्रा यों तन पलपल छीजै ।
मीरा कह प्रभुगिरधरनागर मिलि बिछुरन नहिं दीजै ॥

दूसरा पद—

अब तो निभायाँ सरेगी, बाँह गहेकी लाज ।
समरथ सरन तुम्हारी सइयाँ, सरब सुधारण काज ॥
भवसागर संसार अपरबल, जामें तुम हो जहाज ।
निरधाराँ आधार जगत गुरु, तुम बिन होय अकाज ॥
जुग जुग भीर हरी भक्तनकी, दीनी मोक्ष समाज ।
मीरा सरण गही चरणानकी, लाज रखो महाराज ॥

यों कहकर मीरा नाचने लगी—और अन्तमें भगवान् रण-छोड़जीकी मूर्तिमें समा गयी !

नृत्यत नूपुर बाँधिके गावत लै कर तार ।
देखत ही हरिमें मिली तृण सम गनि संसार ॥
मीराको निज लीन किय नागर नन्दकिशोर ।
जग प्रतीत हित नाथ-मुख रह्यो चूनरी छोर ॥

कहा जाता है कि संवत् १६३० के अनुमान मीराजीका देह भगवान्में मिला था। मीराजीने कई ग्रन्थ रचे थे जो इस समय नहीं मिलते हैं। मीराके भजन तो प्रसिद्ध हैं जो गाता और सुनता है वही प्रेममें मत्त हो जाता है। मीराने प्रकट होकर भारतवर्ष, हिन्दूजात और नारी कुलको पावन और धन्य कर दिया।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय !

ऊंटके पेटमें करमैनीबाई

करमैतीबाई

नश्वर पति-रति त्यागि कृष्णपदसों रति जोरी।
सबै जगतकी फाँस तरकि तिनुका ज्यों तोरी॥
निर्मल कुल काँथड़ा धन्य परसा जेहि जाई।
करि वृन्दावन-वास सन्त-मुख करत बड़ाई॥
संसार-स्वाद-सुख त्याग करि फेरि नहीं तिन-तन चही।
कठिन काल कलियुगमहँ करमेती नि-कलँक रही॥

(नाभाजी)

जिसका मन उस नन्दनन्दन श्यामवदन मोहनकी माधुरी छबिपर मोहित हो जाता है, उसे जगत्के सारे रूप, जगत्के सारे सुख फीके मालूम होने लगते हैं। उनमें भी संसारका जो सुख उस प्रियतमसे अलग करानेवाला होता है, वह तो विषवत् ही प्रतीत होता है। संसारके विषय यदि भगवत्प्रेममें सहायक होकर रहें, प्यारे श्यामकी पूजा-सामग्री होकर रहें, तो अवश्य रहें, उनके रहनेमें परम सुख है क्योंकि

उनसे प्रियतमके पदकमलोंकी पूजा सम्पन्न होती है परन्तु जो विषय प्रियतमके प्रेममें बाधक हों, उनका तो न रहना ही अभीष्ट है। इसीसे भक्तगण या तो सारे संसारको भगवत्पूजाकी सामग्रीके रूपमें रखते हैं या उसे विरोधी अनुभव कर उसका सर्वथा परित्याग कर देते हैं। विषयोंकी आसक्तिका परित्याग तो दोनोंको ही करना पड़ता है। कहीं विषय रहते भी हैं तो वह भोगसामग्रीके रूपमें नहीं रहते, भक्त जब स्वयं अपने-आपको ही प्रभुके चरणोंमें समर्पण कर देता है, तब उसकी अपनी कोई भोग्य-वस्तु तो रह ही कहाँ जाती है? वह भी प्यारेका और उसकी सारी चीजें भी प्यारेकी!

अवश्य ही जो चीज़ प्यारेकी बनकर नहीं रहना चाहती या जिसके कारण प्यारेके प्रति आत्मसमर्पण करनेमें बाधा होती है, वह वस्तु सर्वथा त्याज्य समझी जाती है। हमारी करमैतीबाईने भी यही समझकर पिता और पति-गृहको त्यागकर वृन्दावनकी महायात्रा की थी।

जयपुरके अन्तर्गत खण्डेला नामक एक स्थान है। वहाँ सेखावत सरदार राज्य करते थे। पण्डित परशुरामजी खण्डेला-राज्यके कुलपुरोहित थे। करमैतीबाई इन्हीं भाग्यशाली परशुरामजी-की सद्गुणवती पुत्री थी। पूर्वसंस्कारवश लड़कपनसे ही करमैतीका मन श्यामसुन्दरमें लगा हुआ था। वह निरन्तर

श्रीकृष्णके नामका जाप किया करती और एकान्तस्थलमें श्रीकृष्णका ध्यान करती हुई 'हा नाथ ! हा नाथ !' पुकारा करती । ध्यानमें उसके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगती । शरीरपर पुलकावलि छा जाती । प्रेमावेशमें वह कभी हँसती, कभी रोती और कभी ऊँची सुरीली आवाजसे कीर्तन करने लगती । नन्हीं-सी बालिकाका सरल भगवत्प्रेम देखकर घरके और आसपासके सभी लोग प्रसन्न होते । होते-होते करमैतीकी उम्र विवाहके योग्य हो गयी, पिता माता सुयोग्य वरकी खोज करने लगे । परन्तु करमैतीबाईको विवाहकी चर्चा नहीं सुहाती । वह लज्जावश माता पिताके सामने कुछ बोलती तो नहीं, परन्तु विषयोंकी बातें उसे विषके समान प्रतीत होतीं । इच्छा न होनेपर भी पिताकी इच्छासे उसका विवाह हो गया, परन्तु वह तो अपने आपको विवाहसे पूर्व ही,—नहीं नहीं,—पूर्व जन्ममें ही भगवान्के अर्पण कर चुकी थी । भगवान्की वस्तुपर दूसरेका अधिकार होना वह कैसे सहन कर सकती थी ? वह तो इस संसारके परे दिव्य प्रेम-राज्यके अधीश्वर नित्य नवीन, चिर-कुमार, सौन्दर्यकी राशि श्याम-वदन सच्चिदानन्दको वरण कर दिन-रात उन्हींका चिन्तन किया करती थी । कुछ दिन तो यों ही बीते, परन्तु एक दिन ससुरालवाले उसे लेनेको आगये । उसे पता लगा कि वह जिस घरमें ब्याही गयी है वहाँके लोग भगवान्को नहीं मानते । वे वैष्णवों और सन्तोंके विरोधी हैं । वहाँ उसे अपने प्यारे ठाकुरजीकी सेवाका भी अवसर नहीं

मिलेगा और अपने शरीर मनको भी विषय-सेवामें लगाना पड़ेगा। यह सब सोच विचारकर वह व्याकुल हो उठी, मन-ही-मन भगवान्‌को स्मरणकर रोने लगी उसने कहा, 'नाथ! इस विपत्तिसे तुम्हीं बचाओ। क्या यह तुम्हारी दासी आज जबरदस्ती विषयोंकी दासी बनायी जायगी। क्या तुम इसे ऐसा कोई उपाय नहीं बतला दोगे, जिससे यह तुम्हारे व्रजधाममें पहुँचकर वहाँकी पवित्र धूलिको अपने मस्तकपर धारण कर सके?'

घरमें माता-पिता बेटीको ससुराल भेजनेकी तैयारीमें लगे हैं, इधर करमैती दूसरी ही धुनमें मस्त है। रातको थककर सब सो गये, परन्तु करमैती तो भगवान्‌से उपर्युक्त प्रार्थना कर रही है। अकस्मात् उसके मनमें स्फुरणा हुई, कि जगत्‌की इस विषय-वासनामें, जो मनुष्यको सदाके लिये प्यारे भगवान्‌से विमुख कर देती है, रहना सर्वथा मूर्खता है। अतएव कुछ भी हो, विषयोंका त्याग ही मेरे लिये सर्वथा श्रेयस्कर है। ऐसा विचार कर आधीरातके समय, अन्धकार और सन्नाटेको चीरती हुई करमैती निर्भय चित्तसे अकेली ही घरसे निकल गयी। जो उस प्राणप्यारेके लिये मतवाले होकर निकलते हैं, उन्हें किसीका भी भय नहीं रहता। आजसे पूर्व करमैती कभी घरसे अकेली नहीं निकली थी परन्तु आज आधीरातके समय सब कुछ भूलकर दौड़ रही है। कोई साथ नहीं है। साथ है, भक्तोंके

चिरसखा सदा-संगी भगवान् श्यामसुन्दर, जिनका एक काम ही शरणागत आश्रित भक्तोंके साथ रहकर उनकी रक्षा करना है।

भक्त नाभाजी वर्णन करते हैं—

आधी निसि निकसी यों बसी हिये मूरति सो,
पूरन सनेह तनु-सुधि बिसराई है।
भोर भये शोर परयो पिता-मात सोच करयो,
करिकै यतन ठौर-ठौर ढुँढ़वाई है॥
चारों ओर दौरे नर आये ढिग टरी जानि,
ऊँटके करँक मध्य देह जा दुराई है।
जग-दुरगन्ध कोऊ ऐसी बुरी लागी जामें,
वहु दुरगन्ध सो सुगन्ध लों सराही है॥

भगवत्प्रेममें मतवाली करमैती अन्धकारको भेदन करती हुई चली जा रही है। उसे यह सुधि नहीं है कि मैं कौन हूँ और कहाँ जा रही हूँ।

दिसि अरु विदिसि पन्थ नहिं सूझा,
को मैं कहाँ चलेउँ नहिं बूझा।

वह तो दौड़ी चली जा रही है। रातभरमें कितनी दूर निकल गयी, कुछ पता नहीं। प्रातःकाल हो गया, पर वह तो

नींद-भूखको भुलाकर उसी प्रकार दौड़ी जा रही है। इधर सवेरा होते ही करमैतीकी माताने जब बेटीको घरमें नहीं पाया तो रोती हुई अपने पति परशुरामके पास जाकर यह दुःसंवाद सुनाया। परशुरामको बड़ा दुःख हुआ, एक तो पुत्रीका स्नेह और दूसरे लोक-लाजका भय! यद्यपि वह जानता था कि मेरी बेटी विषय-विराग और भगवदनुरागके कारण ही कहीं चली गयी है तथापि गाँवके लोग न मालूम क्या क्या कहेंगे, मेरी सती पुत्रीपर व्यर्थ कलङ्क लगेगा। इन विचारोंसे वह महान् दुखी होकर अपने यजमान राजाके पास गया। राजाने पुरोहितके दुःखमें सहानुभूति प्रकट करते हुए चारों ओर सवार दौड़ाये। दो घुड़सवार उस रास्ते भी गये, जिस रास्तेसे करमैती जा रही थी। दूरसे घोड़ोंकी टाप सुनायी दी, तब करमैतीको होश हुआ, उसने समझा, हो न हो, ये सवार मेरे ही पीछे आ रहे हैं, परन्तु वह छिपे कहाँ? न कहीं पहाड़की कन्दरा है और न वृक्षका ही कोई नाम-निशान है। रेगिस्तान-सा खुला मैदान है। अन्तमें एक बुद्धि उपजी। पास ही एक मरा हुआ ऊँट पड़ा था। सियार-गिद्धोंने उसके पेटको फाड़कर मांस निकाल लिया था। पेट एक खोहकी तरह बन गया था। करमैती बेधड़क उसी सड़ी दुर्गन्धसे पूर्ण ऊँटके कङ्कालमें जा छिपी। सवारोंने उस ओर ताका ही नहीं। तीव्र दुर्गन्धके मारे वे तो वहाँ ठहर ही नहीं सके। करमैतीके लिये तो विषयोंकी दुर्गन्ध इतनी असह्य हो गयी थी, कि उसने उस दुर्गन्धसे बचने-

के लिये इस दुर्गन्धको बहुत तुच्छ समझा । या प्रेमपागलिनी भक्त-बालिकाके लिये भगवत्-कृपासे वह दुर्गन्ध महान् सुगन्धके रूपमें ही परिणत हो गयी। जिसकी कृपासे अग्नि शीतल और विष अमृत बन गया था, उसकी कृपासे दुर्गन्धका सुगन्ध बन जाना कौन बड़ी बात थी। तीन दिनतक करमैती ऊँटके पेटमें प्यारे श्यामके ध्यानमें पड़ी रही। चौथे दिन वहाँसे निकली। थोड़ी दूर आगे जानेपर साथ मिल गया। करमैतीने पहले हरद्वार पहुँचकर भागीरथीमें स्नान किया, फिर चलते-चलते वह साँवरेकी लीलाभूमि वृन्दावनमें जा पहुँची। उस जमानेमें वृन्दावन केवल सच्चे विरागी वैष्णव साधुओंका ही केन्द्र था, वहाँ चारों ओरके मतवाले भगवत्प्रेमियोंका ही जमघट रहा करता था। इसीसे वह परम पवित्र था और इसीसे भक्तोंकी दृष्टि उसकी ओर लगी रहती थी।

वृन्दावन पहुँचकर करमैती मानो आनन्दसागरमें डूब गयी। वह जंगलमें ब्रह्मकुण्डपर रहने लगी। प्रेमसिन्धुकी मर्यादा टूट जानेसे उसका जीवन नित्य अपार प्रेमधारामें बहने लगा! इधर परशुरामको जब कहीं पता न लगा तो वह ढूँढ़ते ढूँढ़ते वृन्दावन पहुँचा। वृन्दावनमें भी करमैतीका पता कैसे लगता? जगत्के सामने अपनी भक्तिका स्वाँग दिखानेवाली वह कोई नामी-गरामी भक्त तो थी ही नहीं। वह तो अपने प्रियतमके प्रेममें डूबी हुई अकेली जंगलमें पड़ी रहती थी। एक दिन परशुरामने वृक्षपर चढ़कर देखा तो

ब्रह्मकुण्डपर एक वैरागिणी दिखायी दी, वह तुरन्त उतरकर वहाँ दौड़ा गया। जाकर देखता है, करमैती साधु-वेषमें ध्यानमग्ना बैठी है। उसके मुखपर भजनका निर्मल शीतल तेज छिटक रहा है। आँखोंसे प्रेमके आँसुओंकी अनवरत धारा बह रही है। परशुराम पुत्रीकी यह दशा देखकर हर्ष-शोकमें डूब गया। पुत्रीकी बाहरी अवस्थापर तो शोक था और उसके भगवत्प्रेमपर उसे बड़ा हर्ष था। वह अपनेको ऐसी भक्तिमती देवीका पिता समझकर धन्य मान रहा था।

परशुरामको वहाँ बैठे कई घण्टे हो गये। वह उसकी प्रेम-दशा देख-देखकर बेसुध-सा हो गया, पर करमैती नहीं जागी। आखिर परशुरामने उसे हिलाकर होश कराया और बहुत अनुनय-विनयके साथ घर चलकर भजन करनेके लिये कहा। करमैतीने कहा— 'पिताजी! यहाँ आकर कौन वापस गया है? फिर मैं तो उस प्रेममयके प्रेम-सागरमें डूबकर अपनेको खो चुकी हूँ, जीती हुई ही मर चुकी हूँ। यह मुर्दा अब यहाँसे कैसे उठे? आप घर जाकर मेरी मातासहित श्रीकृष्णका भजन करो। इसके समान सुखका साज त्रिलोकीमें कहीं दूसरा नहीं है।' भगवान्‌के गुण गाते-गाते प्रेमविवशमें करमैती मूर्छित हो गयी। ब्राह्मण परशुरामने अपने संसारी जीवनको धिक्कार देते हुए उसे जगाया और श्रीकृष्ण-भजनकी प्रतिज्ञा करके प्रेममें रोता हुआ वहाँसे घर लौटा। घर पहुँचकर उसने गृहिणीको पुत्रीके समाचार सुनाकर कहा कि 'ब्राह्मणी!

तू धन्य है जो तेरे पेटसे ऐसी सन्तान पैदा हुई। आज हमारा कुल पवित्र और धन्य हो गया।'

राजाने जब यह समाचार सुना तो वह भी करमैतीके दर्शनके लिये वृन्दावनको चल दिया। राजाने वृन्दावन पहुँचकर करमैतीकी बड़ी ही प्रेमविभोर अवस्था देखी। राजाका मस्तक भक्तिभावसे उसके चरणोंमें आप ही झुक गया। राजाने कुटिया बना देनेके लिये बड़ी प्रार्थना की परन्तु करमैती इन्कार करती रही। अन्तमें राजाके बहुत आग्रह करनेपर कुटिया बनानेमें करमैतीने कोई बाधा नहीं दी। राजाने कुटिया बनवा दी। सुनते हैं कि करमैतीकी कुटियाका ध्वंशावशेष अब भी है।

करमैतीबाई बड़े ही त्यागभावसे रहती थी। उसका मन क्षण-क्षणमें श्रीकृष्णरूप दर्शनकर मतवाला बना रहता था। उसकी आँखोंपर तो सदा ही वर्षाऋतु छायी रहती थी। यों परम तप करते करते अन्तमें इस तपस्विनी देवीने वहीं देह त्यागकर गोलोककी शेष यात्रा की।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

जनाबाई

—※—
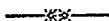
(लेखक—बाबा राघवदासजी)

भगवान्‌को प्रेम प्यारा है, उसे जो सच्चे मनसे चाहता है वह उसीका बन जाता है। भगवत्-प्रेममें जाति-पाँति, विद्या-बुद्धि, धन-ऐश्वर्यकी कोई भी अपेक्षा नहीं है। पुरुष हो—स्त्री हो, पण्डित हो—मूर्ख हो, राजा हो—रंक हो, ब्राह्मण हो—चाण्डाल हो, जो उसे प्रेमसे भजता है वही उसे पाता है। भक्तिमती जनाबाई सुविख्यात भक्तश्रेष्ठ श्रीनामदेवजीके घरमें नौकरानी थी। घरमें झाड़ू देना, बरतन माँजना, कपड़े धोना और जल भरना आदि सभी काम उसे करने पड़ते थे। ऋषि-मुनियोंकी सेवामें रहकर पूर्वजन्ममें जैसे देवर्षि नारदजी भगवान्‌के परम प्रेमी बन गये थे, वैसे ही भक्तवर नामदेवजीके घरमें होनेवाली सत्संगति तथा भगवच्चर्चाके प्रभावसे जनाबाईके सरल हृदयमें भी भगवत्-प्रेमका बीज अंकुरित हो गया! उसकी भगवन्नाममें प्रीति हो गयी, जिसमें जिसकी प्रीति होती है उसे वह भूल नहीं सकता, इसी तरह जनाबाई भी भगवन्नामको निरन्तर स्मरण करने लगी। ज्यों-ज्यों नामस्मरण

भक्तिमती जनाबाई

बढ़ा, त्यों ही त्यों उसके पाप-पुञ्ज जलने लगे और प्रेमका अंकुर पल्लवित होकर दृढ़ वृक्षके रूपमें परिणत होने लगा तथा उसकी जड़ सब ओर फैलने लगी !

एकादशीका दिन है, नामदेवजीके घर भक्तोंकी मण्डली एकत्र हुई है, रातके समय जागरण हो रहा है। नामकीर्तन और भजनमें सभी मस्त हो रहे हैं। कोई कीर्तन करता है, कोई मृदंग बजाता है, कोई करताल और कोई झाँझ बजाता है। प्रेमी भक्त प्रेममें विभोर हैं, किसीको तन-मनकी सुधि नहीं है, कोई नाचता है, कोई गाता है, कोई आँसू बहा रहा है, कोई मस्त हँसी हँस रहा है। कितनी रात गयी, इस बातका किसीको ख़याल नहीं है। जनाबाई भी एक कोनेमें खड़ी प्रेममदमें मत्त होकर झूम रही है। इस आनन्दाम्बुधिमें डूबे रात बहुत ही जल्दी बीत गयी। उषाकाल हो गया। लोग अपने अपने घर गये। जनाबाई भी अपने घर आयी।

घर आनेपर जनाबाई जरा लेट गयी, प्रेमकी मादकता अभी पूरी नहीं उतरी थी, वह उसीमें विभोर हुई पड़ी रही। सूर्यदेव उदय हो गये। जनाबाई उठी और सूर्योदय हुआ देखकर बहुत घबरायी। उसने सोचा, मुझे बड़ी अबेर हो गयी। मालिकके घर झाड़ू-बरतनकी बड़ी कठिनाई हुई होगी, वह हाथ-मुँह धोकर तुरन्त कामपर चली गयी।

पूरा विलम्ब हो चुका था, जना घबराई हुई जल्दी-जल्दी हाथका काम समाप्त करनेमें लग गयी। परन्तु हड़बड़ाहटमें काम पूरा नहीं हो पाता। दूसरे, एक काममें विलम्ब हो जानेसे सिलसिला बिगड़ जानेके कारण सभीमें विलम्ब होता है, यहाँ भी यही हुआ। झाड़ू देना है, पानी भरना है, कपड़े धोने हैं बरतन माँजने हैं और न मालूम कितने काम हैं।

कुछ काम निपटाकर वह जल्दी-जल्दी कपड़े लेकर उन्हें धोनेके लिये चन्द्रभागा नदीके किनारे पहुँची। कपड़े धोनेमें हाथ लगाया ही था कि एक बहुत ज़रूरी काम याद आ गया, जो इसी समय न होनेसे नामदेवजीको बड़ा कष्ट होता, अतएव वह नदीसे तुरन्त मालिकके घरकी ओर चली। रास्तेमें अकस्मात् एक अपरिचिता वृद्धा स्त्रीने प्रेमसे पल्ला पकड़कर जनासे कहा 'बाई जना! यों घबरायी हुई क्यों दौड़ रही हो? ऐसा क्या काम है?' जनाने अपना काम उसे बतला दिया। वृद्धाने स्नेहपूर्ण वचनोंसे कहा, 'घबराओ नहीं! तुम घरसे काम कर आओ, तब-तक मैं तुम्हारे कपड़े धोये देती हूँ!' जनाबाईने कहा, 'नहीं माँ! तुम मेरे लिये कष्ट न उठाओ, मैं अभी लौट आती हूँ।' वृद्धाने मुस्कराते हुए उत्तर दिया, 'मुझे इसमें कोई कष्ट नहीं होगा, मेरे लिये कोई भी काम करना बहुत आसान है, मैं सदा सभी तरहके ही काम करती हूँ, इससे मुझे अभ्यास है! इसपर भी

तुम्हारा मन न माने तो कभी मेरे काममें तुम भी सहायता कर देना।' जनाबाईको घर पहुँचनेकी जल्दी थी, इधर वृद्धाके वचनोंमें स्नेह टपक रहा था, वह कुछ भी न बोल सकी और-मन-ही-मन वृद्धाकी परोपकार-वृत्तिकी सराहना करती हुई चली गयी। उसे क्या पता था कि यह वृद्धा मामूली स्त्री नहीं परन्तु सच्चिदानन्दमयी जगज्जननी है!

वृद्धाने बातकी बातमें कपड़े धोकर साफ कर दिये। कपड़ोंके साथ ही उन कपड़ोंको पहनने और लानेवालोंका कर्म-मल भी धुल गया! थोड़ी देरमें जनाबाई लौटी। धुले हुए कपड़े देखकर उसका हृदय कृतज्ञतासे भर गया। उसने वृद्धासे कहा, 'माता! आज तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ, तुम सरीखी परोपकारिणी माताएँ ईश्वरस्वरूप ही होती हैं।' जना! तू भूलती है। यह वृद्धा ईश्वरस्वरूपिणी नहीं है, साक्षात् ईश्वर ही है। तेरे प्रेमवश भगवान्ने वृद्धाका स्वांग सजा है!

वृद्धाने मुसकराते हुए कहा, 'जनाबाई! मुझे तो कोई कष्ट नहीं हुआ, काम ही कौनसा था? लो अपने कपड़े, मैं जाती हूँ।' इतना कहकर वृद्धा वहाँसे चल दी। जनाका हृदय वृद्धाके स्नेहसे भर गया था, उसे पता ही नहीं लगा कि वृद्धा चली जा रही है। जना कपड़े बटोरने लगी, इतनेमें ही उसके मनमें आया कि 'वृद्धाने इतना उपकार किया है, उसका नाम पता तो पूछ लूँ,

जिससे कभी उसका दर्शन और सेवा-सत्कार किया जा सके ।' वृद्धा कुछ ही क्षण पहले गयी थीं। जनाने चारों ओर देखा, रास्तेकी ओर दौड़ी, सब तरफ ढूँढ़ हारी, वृद्धाका कहीं पता नहीं लगा, लगता भी कैसे ?

जना निराश होकर नदी-किनारे लौट आयी और वहाँसे कपड़े लेकर नामदेवके घर पहुँची। सन्त जनाका मन वृद्धाके लिये व्याकुल था, वृद्धाने जाते जाते न मालूम क्या जादू कर दिया, जना कुछ समझ ही नहीं सकी। बात भी यही है। यह जादूगरनी थी भी बहुत निपुण !

सत्संगका समय था। सन्तमण्डली एकत्र हो रही थी, जनाने वहाँ पहुँचकर अपना हाल नामदेवजीको सुनाना आरम्भ किया, कहते कहते जना गद्गद्कण्ठ हो गयी। भगवद्भक्त नामदेवजी सारी घटना सुनकर तुरन्त लीलामयकी लीला समझ गये और मन-ही-मन भगवान्‌की भक्तवत्सलताकी प्रशंसा कर प्रेममें मग्न हो गये। फिर बोले, 'जना ! तू बड़भागिनी है, भगवान्‌ने तुझपर बड़ा अनुग्रह किया, वह कोई मामूली बुढ़िया नहीं थी, वह तो साक्षात् नारायण थे जो तेरे प्रेमवश बिना ही बुलाये तेरे काममें हाथ बँटाने आये थे।' यह सुनते ही जनाबाई प्रेमसे रोने लगी और भगवान्‌को कष्ट देनेके लिये अपनेको कोसने लगी। सारा सन्त-समाज आनन्दसे पुलकित हो गया।

कहा जाता है कि इसके बाद भगवान्‌के प्रति जनाबाईका प्रेम बहुत ही बढ़ गया था और भगवान् समय समय पर उसे दर्शन देकर कृतार्थ किया करते थे। जनाबाई चक्की पीसते समय भगवत्प्रेमके 'अभंग' गाया करती थी, गाते गाते जब वह प्रेमावेशमें सुध-बुध भूल जाती तब उसके बदलेमें भगवान् स्वयं पीसते और भक्तिमती जनाके अभंगोंको सुन सुनकर प्रसन्न हुआ करते थे। महाराष्ट्र कवियोंने 'जनी संगे दळिले' यानी जनाके साथ चक्की पीसते थे ऐसा गाया है। महाराष्ट्र प्रान्तमें जनाबाईका स्थान बहुत ही ऊँचा है।

रबिया

पुरुष नपुंसक नारि नर, जीव चराचर कोय ।
सर्व भाव भजि कपट तजि, मोहिं परम प्रिय सोय ॥

श्रीभगवान्‌ने गीतामें कहा है—

मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥

हे अर्जुन ! स्त्री, वैश्य, शूद्र और पापयोनिवाले जो कोई भी मेरी शरण हो जाते हैं, वे ही परमगतिको प्राप्त होते हैं । भगवान् केवल प्रेमसे प्रसन्न होते हैं । जाति-पाँति, धन-दौलत, विद्या-बुद्धि आदिकी वे कुछ भी परवा नहीं करते । जो सबका मोह त्यागकर अपने आपको उस प्रभुके चरणोंमें अर्पण कर देता है, प्रभु उसके ही हो जाते हैं । वे चाहते हैं केवल हृदयकी सच्ची भावना, अन्तस्तलका निगूढ़ प्रेम । जहाँ ये वस्तुएँ होती हैं, वहीं वे बिक जाते हैं ।

× × × ×

आजसे १२०० वर्ष पूर्व तुर्किस्तानके बसरा नामक नगरमें

भक्त रबिया

रबियाका जन्म एक गरीब मुसलमानके घर हुआ था। रबिया उसकी चौथी कन्या थी। रबियाकी मा तो उसके बचपनमें ही मर गयी थी। पिता भी रबियाको बारह वर्षकी उम्रमें ही अनाथिनी कर चल बसा। रबिया बड़े ही कष्टके साथ अपना जीवन निर्वाह करती। एक समय देशमें भयानक अकाल पड़ा, जिससे बहनों-का संग भी छूट गया। किसी दुष्टने रबियाको फुसलाकर एक धनीके हाथ बेंच दिया। धनी बड़ा ही स्वार्थी और निर्दय स्वभाव-का मनुष्य था। पैसोंसे खरीदी हुई गुलाम रबियापर तरह तरहके जुल्म होने लगे। गाली और मार तो मामूली बात थी। विषय-मदमें मतवाले लोगोंके लिये ऐसा आचरण स्वाभाविक ही है। रबिया कष्टसे पीड़ित होकर अकेलेमें ईश्वरके सामने रो-रोकर चुपचाप अपना दुखड़ा सुनाया करती। जगत्में एक ईश्वरके सिवा उसे सान्त्वना देनेवाला कोई नहीं था। गरीब अनाथका उस अनाथ-नाथके अतिरिक्त और होता भी कौन है?

मालिकके जुलमसे घबराकर उससे पिण्ड छुड़ानेके लिये रबिया एक दिन छिपकर भाग निकली, परन्तु ईश्वरका विधान कुछ और था। थोड़ी दूर जाते ही वह ठोकर खाकर गिर पड़ी, जिससे उसका दहिना हाथ टूट गया। विपत्तिपर नयी विपत्ति आयी। अमावस्याकी घोर निशाके बाद ही शुक्ल-पक्षका अरुणोदय होता है। विपत्तिकी सीमा होनेपर ही सुखके दिन लौटा करते

हैं। रबिया इस नयी विपत्तिसे विचलित होकर रो पड़ी और उसने दीनोंके एकमात्र बन्धु भगवान्‌की शरण लेकर कहा—'ऐ मेरे मेहरबान मालिक! मैं बिना मा बापकी अनाथ लड़की जन्मसे ही दुःखोंमें पड़ी हुई हूँ। दिन रात यहाँ कैदीकी तरह मरती पचती किसी कदर जिन्दगी बिता रही थी। रहा सहा हाथ भी टूट गया। क्या तुम मुझपर खुश नहीं होओगे? कहो मेरे मालिक! तुम मुझसे क्यों नाराज हो?'

रबियाकी कातरवाणी गगनमण्डलको भेदकर उस अलौकिक लोकमें पहुँच तुरन्त भगवान्‌के दिव्य श्रवणेन्द्रियोंमें प्रवेशकर हृदयमें जा पहुँची। रबियाने दिव्य स्वरोंमें सुना, मानो भगवान् स्वयं कह रहे हैं 'बेटी! चिन्ता न कर। तेरे सारे सङ्कट शीघ्र ही दूर हो जायँगे। तेरी महिमा पृथ्वी भरमें छा जायगी। देवता भी तेरा आदर करेंगे।' सच्ची करुण-प्रार्थनाका उत्तर तत्काल ही मिला करता है।

इस दिव्य वाणीको सुनकर रबियाका हृदय आनन्दसे उछल पड़ा। उसको अब पूरी उम्मीद और हिम्मत हो गयी। उसने सोचा कि जब प्रभु मुझपर प्रसन्न हैं और अपनी दयाका दान दे रहे हैं तब कष्टोंको कोमल कुसुमोंके स्पर्शकी भाँति हर्षोत्फुल्ल हृदयसे सहन कर लेना कौन बड़ी बात है। रबिया अपने हाथ-की चोटके दर्दको भूलकर प्रसन्न चित्तसे मालिकके घर लौट आयी। पर आजसे उसका जीवन पलट गया। काम काज करते

हुए भी उसका ध्यान प्रभुके चरणोंमें रहने लगा। वह रातों जग कर प्रार्थना करने लगी। भजनके प्रभावसे उसका तेज बढ़ गया। एक दिन आधीरातके समय रबिया अपनी एकान्त कोठरीमें घुटने टेके बैठी हुई करुण-स्वरसे प्रार्थना कर रही थी। भगवत्-प्रेरणासे उसी समय उसके मालिककी भी नींद टूटी। उसने बड़ी मीठी करुणोत्पादक आवाज सुनी और वह तुरन्त उठकर अन्दाज लगा रबियाकी कोठरीके दर्वाजेपर आ गया। परदेकी ओटसे उसने देखा, कोठरीमें अलौकिक प्रकाश छाया हुआ है। रबिया अनिमेष नेत्रोंसे बैठी विनय कर रही है। उसने रबियाके ये शब्द सुने। 'ऐ मेरे मालिक! मैं अब सिर्फ तेरा ही हुक्म उठाना चाहती हूँ, लेकिन क्या करूँ, जितना चाहती हूँ उतना हो नहीं पाता। मैं खरीदी हुई गुलाम हूँ। मुझे गुलामीसे फुरसत ही कहाँ मिलती है।'

दीनदुनियाके मालिकने रबियाकी प्रार्थना सुन ली और उसीकी प्रेरणासे रबियाके मालिकका मन उसी क्षण पलट गया। वह रबियाकी तेजपुञ्जमयी मञ्जुल मूरति देख और उसकी भक्ति-करुणा-पूर्ण प्रार्थना सुनकर चकित हो गया। वह धीरे धीरे रबियाके समीप आ गया। उसने देखा, रबियाके भक्तिभावपूर्ण मुखमण्डल और चमकीले ललाटपर दिव्य ज्योति छायी हुई है। उसी स्वर्गीय ज्योति-से मानो सारे घरमें उजियाला हो रहा है। इस दृश्यको देखकर वह भय और आश्चर्यमें डूब गया। उसने सोचा कि, ऐसी पवित्र और

पूजनीय देवीको गुलामीमें रखकर मैंने बड़ा ही अन्याय—बड़ा ही पाप किया है। ऐसी प्रभुकी सेविका देवीकी सेवा तो मुझको करनी चाहिये। रबियाके प्रति उसके मनमें बड़ी भारी श्रद्धा उत्पन्न हो गयी। उसने विनीत भावसे कहा,—'देवि! मैं अबतक तुझे पहचान नहीं सका था। आज भगवत्-कृपासे मैंने तेरा प्रभाव जाना। अब तुझे मेरी सेवा नहीं करनी पड़ेगी। तू सुख पूर्वक मेरे घरमें रह। मैं ही तेरी सेवा करूँगा।'

रबियाने कहा—'स्वामिन्! मैं आपके द्वारा सेवा कराना नहीं चाहती। आपने इतने दिनों तक मुझे घरमें रखकर खानेको दिया, यही मुझपर बड़ा उपकार है, अब आप दया करके मुझको दूसरी जगह चले जानेकी स्वतन्त्रता दे दें तो मैं किसी निर्जन स्थानमें जाकर आनन्दसे भगवान्का भजन करूँ।' मालिकने रबियाकी बात मान ली। अब रबिया गुलामीसे छूटकर अपना सारा समय भजन-ध्यानमें बिताने लगी। उसके हृदयमें प्रेम-सिन्धु छलकने लगा। संसारकी आसक्तिका तो कहीं नाम-निशान भी नहीं रह गया। रबियाने अपना जीवन सम्पूर्णरूपसे प्रेममय परमात्माके चरणोंमें अर्पण कर दिया। रबियाके जीवनकी कुछ उपदेशप्रद घटनाओंका मनन कीजिये—

एकबार रबिया उदास बैठी हुई थी, दर्शनके लिये आनेवाले लोगोंमेंसे एकने पूछा, 'आज आप उदास क्यों हैं?' रबियाने

जवाब दिया–'आज सवेरे मेरा मन स्वर्गकी ओर चला गया था, इसके लिये मेरे आन्तरिक परम सखाने मुझे फटकारा है, मैं इसी कारण उदास हूँ कि सखाको छोड़कर मेरा पाजी मन दूसरी ओर क्यों गया ?' रबिया ईश्वरको सखाके रूपसे भजती थी।

एक समय रबिया बहुत बीमार थी, सूफियान नामक एक साधक उससे मिलने गया। रबियाकी बीमारीकी हालत देखकर सूफियानको बड़ा खेद हुआ, परन्तु वह सङ्कोचके कारण कुछ भी कह नहीं सका। तब रबियाने उससे कहा-'भाई! तुम कुछ कहना चाहते हो तो कहो!'

सूफियानने कहा–'देवी! आप प्रभुसे प्रार्थना कीजिये, प्रभु आपकी बीमारीको जरूर मिटा देंगे।,

रबियाने मुसकराते हुए जवाब दिया–'सूफियान, क्या तुम इस बातको नहीं जानते कि बीमारी किसकी इच्छा और इशारेसे होती है ? क्या इस बीमारीमें मेरे प्रभुका हाथ नहीं है।'

सूफियान–'हाँ, उसकी इच्छा बिना तो क्या होता है ?'

रबिया–'जब यह बात है, तब तुम मुझसे यह कैसे कह रहे हो कि मैं उसकी इच्छाके विरुद्ध बीमारीसे छूटनेके लिये उससे प्रार्थना करूँ। जो मेरा परम सखा है, जिसका प्रत्येक विधान प्रेमसे भरा होता है, उसकी इच्छाके विरुद्ध कार्य करना

क्या प्रेमीके लिये कभी उचित है ?' कैसा सुन्दर आत्मसमर्पण है !

सूफियानने पूछा—'आपको किसी चीज़के खानेकी इच्छा है ?'

रबिया—तुम जानते हो, मैं खजूर खाना चाहती थी। दस वर्षसे यहाँ रहती हूँ, खजूरोंकी भी यहाँ कमी नहीं है, परन्तु मैंने अभीतक एक भी खजूरको जीभपर भी नहीं रक्खा है, मैं तो उस (प्रभु) की दासी हूँ। दासीकी इच्छा कैसी ? जो कुछ भी इच्छा करूँ, यदि वह मेरे प्रभुकी इच्छाके विरुद्ध है तो मेरे लिये सर्वथा त्याज्य है।'

एकबार सन्त हुसैनबसरीने रबियासे पूछा 'क्या आप विवाह करना चाहती हैं ?' रबियाने जवाब दिया 'विवाह शरीरसे होता है, परन्तु मेरे शरीर कहाँ है ? मैं तो मनके साथ इस तनको प्रभुके हाथों अर्पण कर चुकी हूँ, यह शरीर अब उसीके अधीन है और उसीके कार्यमें लगा हुआ है। विवाह किसके साथ किस प्रकार करूँ ?'.

रबियाने अपना सब कुछ प्रभुको अर्पण कर दिया था, उसके समीप एक प्रभुके सिवा ऐसी कोई वस्तु नहीं थी जिसे वह 'मेरी' कहती या समझती हो। एकबार हुसैनबसरीने पूछा—'देवि ! आपने ऐसी ऊँची स्थिति किस तरह प्राप्त की ?'

रबिया—जो कुछ मिला था सो सब खोकर उसे पाया है।

हुसैन—आप जिस ईश्वरकी उपासना करती हैं क्या आपने उस ईश्वरको कभी देखा है ?

रबिया—देखती नहीं तो पूजा कैसे करती, परन्तु मेरे उस ईश्वरका वाणीसे वर्णन नहीं हो सकता, वह माप-तौलकी चीज़ नहीं है ।'

वातों ही वातोंमें एक दिन हुसैनबसरी रबियासे कहने लगे—'परलोकमें अगर एक मुहूर्तके लिये भी मेरा मन प्रभुके चिन्तनको छोड़ेगा तो मैं ऐसा रोऊँगा और विलाप करूँगा, जिसको सुनकर देवताओंको भी मुझपर दया आ जायगी ।'

रबियाने कहा, 'यह तो अच्छी वात है, परन्तु यहाँ ही ऐसा क्यों नहीं किया जाता ? यहाँ होगा तभी वहाँ होगा !'

रबिया सबसे प्रेम करती, पापी-तापी सबके साथ उसका दयाका बर्ताव रहता था ? एक दिन एक मनुष्यने रबियासे पूछा—'आप पापरूपी राक्षसको तो शत्रु ही समझती हैं न ?'

रबियाने कहा—'ईश्वरके प्रेममें छकी रहनेके कारण मुझे न किसीसे शत्रुता करनी पड़ी और न किसीसे लड़ना ही पड़ा । प्रभुकृपासे मेरे कोई शत्रु रहा ही नहीं !'

एक समय कुछ लोग रबियाके पास गये, रबियाने उनमें-से एकसे पूछा—'भाई ! तू ईश्वरकी सेवा किसलिये करता है ? उसने कहा—'नरककी भयानक पीड़ासे छूटनेके लिये ।' दूसरेसे पूछनेपर उसने कहा—'स्वर्ग अत्यन्त ही रमणीय स्थान है, वहाँ

भाँति भाँतिके भोग और असीम सुख है, उसी सुखको पानेके लिये मैं भगवान्‌की भक्ति करता हूँ।'

रबियाने कहा—'वेसमझ भक्त ही भय या लोभके कारण प्रभुकी भक्ति किया करते हैं, न करनेसे तो यह भी अच्छी ही है परन्तु मान लो, यदि स्वर्ग या नरक दोनों ही न होते तो क्या तुम लोग प्रभुकी भक्ति करते ? सच्चे भक्तकी ईश्वर-भक्ति किसी भी लोक-परलोककी कामनाके लिये नहीं होती, वह तो अहैतुकी हुआ करती है !' कैसा आदर्श भक्तिका निरूपण है !

एकबार एक धनी आदमी रुपयोंकी थैली लेकर हुसैन-बसरीके साथ रबियाके पास गया, और उसने रुपये स्वीकार करनेके लिये प्रार्थना की। रबियाने कहा— 'इस दुनियाँमें जो लोग मालिककी निन्दा करते हैं, वह महान् उदार परमात्मा नाराज होकर उनके लिये खान-पान बन्द नहीं करता, फिर वह अपने गुलामोंके लिये कंजूसी क्यों करने लगा ? मैंने जबसे उसका यह महत्त्व समझा है तबसे मेरी कुछ भी प्राप्त करनेकी वासना चली गयी है, भला, बताओ, मैं इस धनका क्या करूँ ?'

इसीतरह एकबार एक धनी मनुष्यने रबियाको बहुत फटे-पुराने चिथड़े पहने देखकर कहा— 'हे तपस्विनी ! यदि आपका इशारा हो तो आपकी इस दरिद्रताको दूर करनेके लिये यह दास तैयार है।'

रबिया–'सांसारिक दरिद्रताके लिये किसीसे कुछ भी माँगते मुझे बड़ी शरम मालूम होती है। जब यह सारा जगत् मेरे प्रभुका ही राज्य है, तब उसे छोड़कर मैं दूसरे किससे क्या माँगूँ ? मुझे जरूरत होगी तो अपने मालिकके हाथसे आप ही ले लूँगी।' धन्य निर्भरता !

एक समय एक मनुष्यने रबियाके फूटे लोटे और फटी गुदड़ीको देखकर कहा—'देवि ! मेरी अनेक धनियोंसे मित्रता है, आप आज्ञा करें तो आपके लिये जरूरी सामान ले आऊँ ?'

रबिया—'तुम बहुत गलती कर रहे हो, वे कोई भी मेरे अन्नदाता नहीं हैं। जो यथार्थ जीवनदाता है वह क्या गरीबीके कारण गरीबको भूल गया है ? और क्या धनके कारण ही वह धनवानोंको याद रखता है ?'

रबिया कभी कभी प्रेमावेशमें बड़े जोरसे पुकार उठती—लोग उससे पूछने लगे कि 'आपको कोई रोग या दुःख न होनेपर भी आप किसलिये चिल्ला उठती हैं ?' रबियाने कहा—'मेरे बाहरी बीमारी नहीं है, जिसको संसारके लोग समझ सकें, मेरे तो अन्तरका रोग है, जो किसी भी वैद्य हकीमके वशका नहीं है। मेरी यह बीमारी तो सिर्फ उस मनमोहनके मुखड़ेकी छवि देखनेसे ही मिट सकती है।'

रबियाका मन सदा-सर्वदा प्रभुकी उपासनामें लगा रहता

था, वह दिन-रात प्रभुके चिन्तनमें अपना समय बिताती, एक-बार रबियाने प्रभुसे प्रार्थना की 'हे स्वामी ! तू ही मेरा सब कुछ है, मैं तेरे सिवा और कुछ भी नहीं चाहती। हे प्रभो ! यदि मैं नरकके डरसे तेरी पूजा करती हूँ तो मुझे नरकाग्निमें भस्म कर दे। यदि मैं स्वर्गके लोभसे तेरी सेवा करती हूँ तो स्वर्गका द्वार मेरे लिये बन्द कर दे और अगर तेरे लिये ही तेरी पूजा करती हूँ तो अपना परम प्रकाशमय सुन्दर रूप दिखलाकर मुझे कृतार्थ कर।'

रबियाका शेष जीवन बहुत ही ऊँची अवस्थामें बीता, वह चारों ओर अपने परम सखाके असीम सौन्दर्यको देख-देखकर आनन्दमें डूबी रहती। एक दिन रातको जब कि चन्द्रमाकी चाँदनी चारों ओर छिटक रही थी, रबिया अपनी कुटियाके अन्दर किसी दूसरी ही दिव्य सृष्टिकी ज्योत्स्नाका आनन्द लूट रही थी। इतनेमें एक परिचित स्त्रीने आकर ध्यानमग्न रबियाको बाहरसे पुकारा 'रबिया ! बाहर आकर देख कैसी खूबसूरत रात है।' रबियाके हृदयमें इस समय जगत्का समस्त सौन्दर्य जिसकी एक बूँदके बराबर भी नहीं है वही सुन्दरताका सागर उमड़ रहा था। उसने कहा— 'तुम एकबार मेरे दिलके अन्दर घुसकर देखो, कैसी दुनियासे परेकी अनोखी खूबसूरती है।'

हिजरी सन् १३५ में रबियाने भगवान्में मन लगाकर इस नश्वर शरीरको त्याग दिया !